ॐ

श्री परमात्मने नमः

कविराज श्री चारित्रभूषण विरचित

महीपाल चरित्र

—: सम्पादन :—

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज०)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2081 | **वीर संवत 2551** | **ई. सन 2025**

—: प्रकाशन :—

आषाढ़ माह अष्टाह्निका महापर्व एवं
वीर शासन जयन्ती, जुलाई 2025
के पावन प्रसंग पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय निवेदन

श्री कविवर चारित्रभूषण रचित महीपाल चरित्र का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि में चारों अनुयोगों का उपदेश होता है, उसमें प्रथम अनुयोग का नाम प्रथमानुयोग है। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग और करणानुयोग में जो वर्णन है, उसकी दृष्टान्त द्वारा प्रसिद्धि, प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोग के अभ्यास से तीनों अनुयोगों का समझना सरल बनता है।

प्रथमानुयोग के अभ्यास से—

❖ पुराण–पात्रों के प्रसंग पढ़ने–विचारने से दृढ़ता होती है कि क्रमबद्ध अनुसार – होनहार अनुसार परिणमते हुए परिणमन काल में उसके योग्य पुरुषार्थ होता ही है; क्रमबद्ध अनुसार पुरुषार्थ होता ही है, कर्तृत्वपूर्वक करना नहीं पड़ता परन्तु सहजरूप से उसके योग्य पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता, इसलिए मुझे कर्तृत्वपूर्वक पुरुषार्थ करने का बोझा भी नहीं रहता। मैं तो मात्र ज्ञातारूप से रहता हुआ एक ज्ञायकभाव हूँ।

❖ जीवों के भूतकाल के और भविष्य काल के निश्चित परिणामों का वर्णन जानकर क्रमबद्धपर्याय की यथार्थ श्रद्धा द्वारा अकर्तास्वभाव के सन्मुख हुआ जाता है।

❖ संसारी जीवों के पापमय परिणामों होने पर भी उनकी क्षणिकता समझने से स्वभाव में संसार की गन्ध भी नहीं है, ऐसा महिमावन्त ज्ञायक मैं हूँ – ऐसी दृढ़ता होती है।

❖ एक जीव दूसरे जीव पर क्रोध करे तो उसके संस्कार भव–भव तक रहते हैं, राग करे तो उसके संस्कार भी भव–भव तक नहीं छूटते और कुदेव–गुरु–धर्म के सेवन से नरक–निगोद में चिरकाल भ्रमण करके फिर से मनुष्य होने पर कुधर्म के संस्कार पुनः जागृत हो जाना जानकर, जीव को वीतरागधर्म की आराधना की विशेष जागृति रहती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में महीपाल कुमार के जीवन का भाववाही निरूपण किया गया है। अनेक प्रकार की विषम परिस्थितियों के मध्य भी उन्होंने धैर्य का परित्याग न करके वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु एवं निज शुद्धात्मतत्त्व की आराधना में अपने चित्त को लगाया और परिस्थितियों की अनुकूलता के काल में भी रंजायमान न होकर जल से भिन्न कमलवत् रहकर अपनी आत्मसाधना को वृद्धिगत किया। जिनके जीवन से हमें भी आत्महित की प्रेरणा प्राप्त होती है।

वर्तमान में इस ग्रन्थ की अनुपलब्धता एवं उपयोगिता को दृष्टिगोचर रखते हुए प्रस्तुत सम्पादित संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें अष्टद्रव्य पूजा सम्बन्धी आचार्य पद्मनन्दिदेव के कथन को प्रसंगानुसार स्थान दिया गया है और जिनेन्द्र पूजन, दर्शन, दान इत्यादि की विशेष प्रेरणा के लिये कुछ अंश श्रावकधर्म प्रकाश से समायोजित किया गया है। साथ ही, वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के अलावा अन्य किसी की आराधना जिनशासन संगत नहीं होने से यथोचित संशोधन किया गया है।

सभी जीव इस ग्रन्थ को पढ़कर निज आत्महित साधें, इसी भावना के साथ।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

ॐ

कविराज चारित्रभूषण विरचित

महीपाल चरित्र

श्लोक

भूयांश देशेशित कुंतलाली, दूर्वांकुरालीव विभाती नीला।
कल्याण लक्ष्मी बसति सदिश्या, दादीश्वरा मंगल मालिकाञ्च ॥

अर्थ—जिनके वृहद्स्कन्धों पर श्याम केशों की पंक्ति शोभित है, हरित दुर्वांकुरों की पंक्ति के समान जो जन-मन को हरण करनेवाली है तथा जो आदिब्रह्म प्रभु कल्याण लक्ष्मी-शिव मोक्ष के निवास हैं, वे मंगल रूप प्रभु आपको श्रेष्ठ कल्याण समूह प्रदान करें। पूज्यपाद स्वामी ने अपने इष्टोपदेश में कहा है —

अज्ञानो-पास्तिज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयाः।
ददाति यन्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वंचः ॥२३ ॥

अर्थात् अज्ञानी व ज्ञानी की उपासना, सेवा से क्रमशः अज्ञान व ज्ञान की प्राप्ति होती है क्योंकि जिसके पास जो होता है, वही वह उपासक भक्त को देता है। अस्तु! आदीश्वर प्रभु मोक्षश्री के निवास हैं, इसलिए आप भक्तों को भी वही चिर-लक्ष्मी-मुक्तिश्री के दाता होवें ॥१ ॥

चिदानन्दस्वरूप जिनेन्द्र प्रभु के मुखारविन्द से निर्गत द्वादशांग

रूप शारदा–सरस्वती माता, भेदविज्ञानरूप परमपैनी बुद्धि भव–भव में प्रदान करें। सत्वाणी के प्रसाद से मूर्ख–अज्ञानी जड़बुद्धि मनुष्य भी क्रमशः द्वादशांग वाणी के पारंगत हो जाते हैं ॥२॥

★ ★ ★

सत्संग स्मरण

पुण्यरूप अद्वितीय सार सम्पन्न सत्पुरुष जग के हितकारी होते हैं। परोपकार उनका व्रत होता है। पर का कल्याण करने में सदा तत्पर रहते हैं। अपने शत्रु का भी भला चाहते हैं, फिर मित्र का हित क्यों नहीं चाहेंगे अर्थात् मित्रों के कार्य में तो अवश्य ही सहयोग प्रदान करेंगे। मेरा कार्य निर्विघ्न हो, एतदर्थ उनका स्मरण करना आवश्यक है।

★ ★ ★

दुर्जन स्मरण

सज्जन की भाँति दुर्जन भी निज कार्य सम्पादन में मनुष्य को सावधान करते हैं। यदि विघ्न भय न हो तो मनुष्य अपने कार्य में निश्चिन्त होकर प्रमादी हो जावें अर्थात् विघ्न भी कार्य स्मरण कराने में सहायक है।

★ ★ ★

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा

ग्रन्थकर्ता श्री चारित्रभूषण कवि प्रथम ग्रन्थ रचना की प्रतिज्ञा करते हैं। मैं चारित्रभूषण कवि श्रीमत् वृहद् लक्ष्मी-राजलक्ष्मी एवं कलाश्री से सम्पन्न श्री महीपाल राजा का मनोहर चरित्र परोपकार की भावना से कहता हूँ। इस काव्य रचना में नव रसों का सुन्दर सन्निवेश है, जिससे यह आबाल, वृद्ध, अज्ञ-विज्ञ सभी को आनन्ददायक है। यह उपाख्यान वास्तव में सर्वसाधारण जीवों के लिए अनुकरणीय है। जीवन की जटिल समस्यायें कैसे सरलता से सुलझाई जा सकती हैं, इससे भली प्रकार अवगत होता है, स्वार्थी मानव की कुटिलता और उसका दुर्विपाक एवं सत्य की विजय, कला का प्रकाश इसमें बड़े सुन्दर ढंग से समझ में आता है। विद्या की महिमा, सम्यग्ज्ञान का महत्व समझकर प्रत्येक कल्याणेच्छुक इससे लाभान्वित होगा।

★ ★ ★

सद्धर्म की महिमा

भयंकर दुखमय संसार में धर्म ही एक शरण है। धर्म ही सर्व मंगल दायक है। धर्म हितैषिणी माता के समान मनुष्य का सर्व प्रकार अपायों को दूर कर रक्षण करता है। सम्पूर्ण विपत्तियों का निवारक एकमात्र धर्म है, धर्म पिता के समान इच्छित पदार्थों का दाता है एवं धर्म ही सच्चे मित्र के समान हर्ष करनेवाला है। नारी की शोभा उत्तम निर्दोष शील है, गुणज्ञ शिष्य की शोभा विनय

है। धर्म नेता या मोक्षमार्ग का प्रवर्तक नय स्याद्वाद द्वारा शोभित होता है। मोक्षाभिलाषी निस्पृही–निर्ग्रन्थ वीतरागी साधु क्षमागुण धारण कर शोभित होता है। उसी प्रकार मनुष्य भव की शोभा, सफलता धर्म धारण करने से होती है। निर्ग्रन्थ पूज्य, चक्षुविहीन, मूर्ख, सुपुत्र हीन कुल, निर्जल सरोवर, गुणविहीन रूप सौन्दर्य, व्यर्थ है। उसी प्रकार धर्मविहीन नरजन्म निरर्थक है। धर्म के प्रभाव से मनुष्य उत्तम रूप अपरिमित धन, अपरिमित ऐश्वर्य, निर्मल यश, सदाचार, शिष्टबुद्धि एवं विविध कलागुणों को प्राप्त करता है। परन्तु महीपाल चरित्र इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि पुण्य विहीन मनुष्य प्राप्त वैभव को भी खोकर दीन हो, नाना दुःखों का भाजन होता है। जबकि पुण्यात्मा अनेक जाति की विपत्तियों में पड़कर भी कल्याणकारी सुख सम्पदाओं का स्वामी होकर यशस्वी होता है।

★ ★ ★

कथारम्भ

अनन्तों तीर्थंकरादि सत्पुरुषों का जन्मदाता सुप्रसिद्ध भरतक्षेत्र है। इसमें मालव देश अति रमणीक है। जिसमें अवन्ती नगरी अपनी शस्य श्यामला भूमि पर शोभायमान हो रही है, जो कि सर्वप्रधान है तथा न्याय प्रवृत्ति से विरोध मान्य है, न्यायी राजा के शासन के प्रजा सुखी है। शत्रुओं से रहित है। गगनचुम्बी विशाल प्रासाद हैं। सूर्य के मन्द-गमन से ऐसा प्रतीत होता है, मानों इस उतुंग सौध-महलों से टकराने के भय से वह धीरे-धीरे गमन कर रहा है। धन-धान्य से सम्पन्न है। नाना फल-फूलों से भरित हरित उद्यान शोभित हैं। नगर की रक्षार्थ विशाल उचित कोट व खाई है। बड़े-बड़े वीर योद्धा रक्षा करते हैं। स्वामी भक्त वीर भटों से महान बलवान शत्रु भी प्रकम्पित एवं भयभीत रहते हैं। विशाल सुन्दर पापनाशक भव्य जिनभवन शोभायमान है। प्रासादों की भव्यपंक्तियों से स्वर्गपुरी के समान प्रतीत होती है। इसके निवासी भव्यजन स्वर्गसम्पदा और श्री को भी तुच्छ समझते हैं। देवपुरी में लक्ष्मी का धनी एकमात्र कुबेर है। वह भी दानविहीन है परन्तु इसी अवन्तीपुरी में हजारों धनाढ्य दाता अपना धन मुक्त हस्त से लुटाते हैं, दान करते हैं। पुण्य महिमा प्रदर्शन कर पुण्य धर्म, पुण्यानुबन्धीपुण्य संचय की प्रेरणा करते हैं। यह अनेक लक्ष्मी पति व राज श्रेष्ठियों से भरी हुई है। जवाहरातों व रत्नों की राशियाँ यत्र-तत्र बिखरी हुई पड़ी है, आकाश मण्डल ताराओं से रंजित है, उसी प्रकार यह नगरी अनेकों मंगल कल्याण क्रियाओं से व्याप्त आकाश का तिरस्कार करती है। अनेकों प्रकार के श्री

मुनिगण यहाँ विविध प्रकार के तपश्चरण कर इस नगरी को सनाथ बनाते हैं। आकाश में एक ही गुरु ग्रह उनका दीपन करता है। आकाश में कलावान एक चाँद है, अवन्ती में अनेकों गुण कलाओं से सम्पन्न नर रत्न हैं। आकाश में मन्द शनैश्चर ग्रह और बुद्ध सूर्य ग्रह हैं और यहाँ अनेकों शूरवीर शोभायमान हैं। जिस प्रकार शुक्रतारा नाना वर्गों से नभ की शोभा बढ़ाता है, उसी प्रकार यहाँ ब्राह्मण परिवार, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों ही वर्गों के लोग नगरी की श्री बढ़ाते हैं। सर्वत्र धर्मानुष्ठानों से पवित्र नगरी पुण्य का फल साक्षात् दर्शा रही हैं।

इसका राजा नृसिंह यथा नाम तथा गुण था। मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी था। शत्रुओं को यथापशामक शिष्टों का पालक था। सभी प्रजा निर्भय हो अपने-अपने कार्यों में प्रवृति थी, सुखी, सम्पन्न और धर्मात्मा थी। सर्व सुखी सम्पन्न थे, हाँ यदि कष्ट था तो शत्रुओं की नारियों को ही था। उसके राज्य में ईंति, भीति, अनावृष्टि आदि उपद्रव कभी नहीं होते हैं। क्योंकि सभी जन दान पूजा विधान अनुष्ठानादि में रत थे। आगम में कहा है—

ज्ञानवान ज्ञान दानेन, निर्भयो अभय दानतः।
अन्न दानात्सुखी नित्यं, निरामयो भैषजाभ्दवेत्॥

अर्थात् ज्ञान-(शास्त्र) दान से मनुष्य विशिष्ट ज्ञानी, अभय दान से निर्भय, शूरवीर पराक्रमी, अन्नदान से सतत् सुखी धन-धान्य एवं औषधदान से निरोग आधि-व्याधि से रहित होता है। यहाँ यह विचारणीय है कि यदि हमें भेदविज्ञानी सच्चा ज्ञानी बनना है तो निरन्तर ज्ञानदान, ज्ञानाभ्यास करने कराने में तल्लीन

रहें। निर्भय, निर्भीक, धर्मसिंह बनना है, भौतिकवादी गीदड़ों पर विजय पाना है तो सर्व प्राणियों का–रक्षण करें। दीन–दुखियों को करुणा दान प्रदान करें। शरीर से ज्ञान–ध्यान तप, संयम साधना करने के लिए निरोग होन आवश्यक है और इसका साधन है औषधिदान। शुद्ध औषधिदान के प्रभाव से ही कृष्ण महाराज ने तीर्थंकर गोत्र का बन्ध कर लिया था। नृसिंह राजा की प्रजा चारों प्रकार का दान करने में दत्तचित्त थी। इसलिए सब सुखी सम्पन्न थे।

स्वयं राजा भी दानवीर सद्‌गुणानुरागी, प्रजावत्सल, स्वजन स्नेही मित्रों में मैत्रीभाव धारी, शस्त्रविद्या निपुण युद्धकला प्रवीण, शास्त्राभ्यासी एवं धर्मानुरागी था। राजा के प्रताप रूपी सूर्य के समक्ष शत्रुदल रूपी अन्धकार विलीन हो गया था, भला प्रकाश और तम की मैत्री कैसे हो सकती थी। एक विशेष महत्व यह था कि भानु का उदय होने से कमलिनियाँ सुकुचित हो जाती हैं, किन्तु राजा के प्रताप भास्कर ने शत्रुवनिताओं के मुख कमलिनियों की शोभा का सर्वथा अपहरण कर लिया था।

पुण्य की महिमा बड़ी विचित्र होती है। गुणवान राजा के कुछ समय बाद रूप, विद्या, कलागुण युक्त सुन्दर, बुद्धिमान, जगत में विख्यात महीपाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। नाना कलाओं से युक्त, विनम्र, पितृभक्त आज्ञाकारी नर रत्न महीपाल सर्व गुणों सहित वृद्धि को प्राप्त हुआ। यौवन सम्पन्न महीपाल का विवाह अपूर्व कला लावण्यमयी शील शिरोमणि लज्जा विनयादि गुणसहित विदुषी पति भक्त सोमश्री के साथ हुआ। दोनों का जीवन

मणिकांचन संयोगवत् सुशोभित हो गया। उनकी श्री भोग विलासादि से वे दोनों, कामदेव–रति समान प्रतीत होते थे। अथवा लक्ष्मी सहित नारायण ही हों! गांभीर्य से वे दोनों महादेव–पार्वती समान जान पड़ते थे, वह धीर वीर विचारज्ञ सदा सत्पुरुषों के साथ रहता, गुरुजनों की सेवा करना ही अपना कर्तव्य समझता था। श्रवण कुमार के समान उसकी पितृभक्ति प्रशंसनीय थी। वह सदैव पिता की सेवा में तत्पर रहता था। राजा नृसिंह प्रत्येक राजकार्य में राजकुमार महीपाल की राय लेते थे। उसकी बात को मान्य करते थे। और वह भी अपनी अन्योक्ति (परमत की कथा) वक्रोक्ति (वचनकला–सत्यार्थकथा) का प्रयोग कर समस्त सभासदों को आश्चर्यचकित कर राजा का मन रंजायमान करता था। वह चतुर अपने गुणों से सबके मन को हरण कर लेता था।

जिस प्रकार निर्विकल्प ध्यानी मुनि ध्यान में लीन रहते हैं, मुनिराज ध्यान और वैराग्य ही को जानते हैं, भोगीजन ही पंचेन्द्रियों के भोगों का स्वाद समझते हैं, वियोगीजन ही विरह जन्य दुःख का अनुभव करते हैं। गान विद्या का प्रेम हिरण ही संगीत का अद्भुत आनन्द लेता है, सच्चा शूरवीर ही रणभूमि में प्राणों की बाजी लगा विजय पताका उड़ाने का मजा लेता है। कवि ही कविता की पहचान करने में एकाग्र होता है। गुणवान ही गुणज्ञ के गुणों का सम्मान करता है। उसी प्रकार युवराज महीपाल अपने पिता की सेवा में निपुण पितृभक्ति का आनन्द लेता था। राजा उसकी पारखी बुद्धि पर न्योछावर था। उसकी हस्तपरीक्षा, अश्वपरीक्षा, रत्नपरीक्षा आदि की प्रवीणता देख–देखकर फूला

नहीं समाता, परन्तु महीपाल तनिक भी अहंकार नहीं करता था। राजा की कृपा का अहंभाव उसे छू भी नहीं सका था। उसके सोने के दिन और चाँदी की रात अमन-चैन से व्यतीत होने लगी। उसकी यश की सौरभ के प्रसार से राजा प्रसन्न था किन्तु वह अहर्निश अपनी ही सेवा में रखना चाहता था। एक क्षण भी उसे वियुक्त नहीं होने देता। वह भोग्य जीविका प्रदान करता था। हर प्रकार के सुख साधन देता था।

★ ★ ★

पिता-पुत्र का मतभेद

एक दिन बड़े दुलान से राजा ने कहा—बेटा! तुम हर घड़ी मेरी ही सेवा में रहा करो। हे गुणज्ञ, प्रचुर बुद्धिनिधान राज प्रासाद के अन्दर या बाहर मेरे साथ-साथ ही आया-जाया करो। क्षणमात्र भी तुम्हारा वियोग मेरे लिये असह्य है। राजा की आज्ञा प्रमाण रहने से उसकी प्रसिद्धि दिनों-दिन बढ़ने लगी, जैसे रजनीगन्धा की महक (सुगन्ध) सांझ होते ही बिखरने लगती है। बेला की महक रात ढलने पर बढ़ने लगती है। राजा की कृपा और देव का दर्शन, और सत् पुरुषों की वाणी अमोघ रहती है।

एक दिन वह राजकुमार राजा को किसी कार्यवश व्याकुल देख कार्यन्तरों में फँसा समझकर स्वयं बाहर चला गया। कुछ कलाकारों, विद्या-विशेषज्ञों, कलाशास्त्र पारंगतों से भेंटकर विशेष कलाओं का अध्ययन करने लगा। कला-प्रेम का प्रेमी उसके

आनन्दरस में डुबकी लगाने लगा और उधर पिता की सेवा का समय उल्लंघन होने लगा।

एक दिन कुमार सेवाकाल उल्लंघन कर उपस्थित हुआ। पिता के कारण पूछने पर उत्तर दिया 'मैं तो सदा आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। समय पाकर यदा-कदा कुछ पण्डित विद्वानों के सम्पर्क में जाकर कलाशास्त्र का अभ्यास करता हूँ।' युवराज सत्यवादी था, इसलिए निर्भीक था। पिता उत्तर सुनकर कुछ व्यग्र हो बोला 'बेटा! कलाभ्यास से क्या प्रयोजन? धन जीवन का रक्षक है, कलाभ्यास से क्लेश भाव ही प्राप्त होगा। मेरी सेवा में तो राजगद्दी मिल सकती है। वैभव से सर्वसुख उपलब्ध होते हैं। धनी का आदर होता है। धनाढ्य के सब सेवक बन जाते हैं। ऐश्वर्यवान का सब जगह आदर होता है। अस्तु तुम्हें कलाभ्यास का व्यामोह छोड़ मेरी ही सेवा करना उचित है।

अरे, क्या व्याकरण पढ़ने से क्षुधा शान्त होती? काव्य रसपान से क्या प्यासे की तृषा बुझ सकती है? अरे, छन्द शास्त्र पढ़कर किसी ने भी कुल का उद्धार किया है? कला के पीछे भूत न बन धनोपार्जन कर, धनवान के आश्रित सभी गुण शोभा पाते हैं। कहा भी है—

'सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयान्ति'

समस्त गुण काञ्चन-वैभव के आश्रित रहते हैं।

कुमार ने सब कुछ सुना, स्वीकृति रूप आश्वासन भी दिया। सेवा में भी तत्पर हुआ, परन्तु कलाभ्यासरूप व्यसन से विमुख नहीं हो सका। सच ही है—

जो जाके गुण जानहिं, सो तिहि आदर देत।
कोयल अम्बा लेत है, काक निबौरी हेत॥

रसाल (आम) और निबौली (नीमफल) एक साथ पकते हैं। कोयल आम खाती है परन्तु कागा निबौली ही खाता है। क्योंकि जो जिसके गुणों से परिचित होता है, वह उसी संचय व सम्मान एवं प्रयोग करता है।

राजकुमार महीपाल पिता की सेवा यथायोग्य करता था परन्तु कलाप्रेम बढ़ता गया। सेवा का समय कम होने लगा। पिता को यह खटका। वह चाहता था कुमार मेरी सेवा के अतिरिक्त कुछ न करे। इधर कुमार का विद्यानुराग, कलाप्रेम उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होने लगा। दोनों पिता-पुत्र की भावनाओं का विभेद होने लगा। फलतः दोनों पिता-पुत्र की भावनाओं में विभेद होने से पवित्र स्नेह-प्रेम भी दोगला होने लगा। राजा को कला के प्रति विकर्षण था तो युवराज को पराधीन जीवन से घृणा। उसे रुचि थी, गुणों में अनुराग, कुशलता में प्रीति और स्वाधीनता में सच्चा आनन्द था। वह पिता की अपेक्षा भली प्रकार अनुभव करता था कि स्वतन्त्र जीवन परम हितकर सुखकर है और पराधीनता सर्व अनर्थों की और आत्मा के पतन की जड़ है। कहा भी है—

जो नर सदा पराये मुख को खड़े-खड़े ही तकते हैं।
उनके हाथ कुछ नहीं आता और न कुछ कर सकते हैं॥

युवराज ने अनुभव किया कि वनिता, अग्नि और भूपाल इनका मध्यवृति से सेवन करे, वही चतुर है, अतः मुझे भी यही करना योग्य है। इस प्रकार वह उचित काल विभाजन कर सेवा

भी करता और कलाभ्यास भी करता रहा। परन्तु विद्या से प्रेम सबको समान नहीं होता। राजा को यह सहन नहीं हुआ। एक दिन कुपित होकर कुमार से बोला—'हे कुमार! तू जीविका तो मेरी दी हुई भोगे और सेवा नहीं करे, यह महान कृतघ्नता है। तुझे मेरे अनुकूल चलना ही पड़ेगा।'

विनम्रता से कुमार ने उत्तर दिया—'पितातीी! आपकी आज्ञा मान्य है। आप पूज्य हैं। आपकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है। यह मैं जानता हूँ और यथायोग्य करता भी हूँ। किन्तु विद्याविहीन नर बिना सींग-पूंछ का पशु है। पिताजी! कलावन्त होना पुरुष की शोभा है, आप भी मेरी कला के कारण ही मेरा सम्मान करते हैं। राजसभा में मुझे आगे रखते हैं, लोग मेरी प्रशंसा करते हैं। फिर आप मेरा कलाभ्यास क्यों छुड़ाना चाहते हैं? मैं कलाभ्यास छोड़ने को तैयार नहीं। इसके लिए आप क्षमा करें।

कला का महत्व बतलाते हुए कुमार ने कहा—कला गुण विशिष्ट मनुष्य का यश चारों ओर व्याप्त होता है, मूर्ख मनुष्य का रूप लावण्य, धन, वैभव व्यर्थ है। समुद्र पिता से बहिष्कृत भी चन्द्र, कलागुण सहित होने से शम्भु के मस्तिष्क पर शोभित होता है, कलावान पुरुष के अनेकों दुर्गुण उसकी कला के आंचल में छुप जाते हैं। लोक में कहावत है कि नारायण (देवों) ने एक बार समुद्र का मंथन किया। उसने उसमें से नवरत्न निकाले, उसमें चन्द्रमा भी एक रत्न था। यद्यपि चन्द्रमा में कलंक है (मृग लांछन है) वह रात्रि का करनेवाला है, पिता से (समुद्र से) उपेक्षित है, मित्र (सूर्य) से रहित है। तो भी अपने कला गुणों के

कारण लोकमान्य है। पूज्य है। एक कलामात्र धारी शशांक को द्वितीया के दिन देखने के लिये लोग पलक पांवड़े बिछाये प्रतीक्षा करते हैं। कला की वृद्धि के साथ उसका आदर, सत्कार महत्व बढ़ता जाता है। उसी प्रकार कलावान पुरुष कलंकी होने पर मित्र, हितैषी, बांधवों से विहीन भी है तो भी चन्द्रमा सदृश लोक प्रिय हो जाता है, लोकमान्य ही सर्वप्रिय बन जाता है। राज्य भी विद्या के समक्ष तुच्छ है।

विद्या कला के सामने राज्य का कोई महत्व नहीं। कलाधारी गुणज्ञ पुरुषों के सामने राजा का कोई भी प्रभाव नहीं। राजा अपने राज्यान्तर्गत ही शोभा पाता है किन्तु विद्वान कलागुणधारी सर्वत्र सम्मान का पात्र होता है, प्रशंसनीय होता है। देखिए नीतिकार भी यही कहते हैं—

विद्वत्वंच नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते॥

अर्थात् राज्य से महान सद्ज्ञान-विवेक कला है।

युवराज के इन सत्य, योग्य वचनों को सुनकर राजा क्रोधित हो गया। सच है, स्वार्थ में अन्धा मनुष्य यथायोग्य विचार विहीन हो जाता है। क्रोध से संतप्त राजा ने उसी क्षण महीपाल कुमार को भर्त्सना कर राज्य से बाहर जाने की आज्ञा दी। कठोर वाणी में कहा—'उद्धत् पुरुष! तुझे कला का अहंकार है, तू विद्या के मद में झूम रहा है। जा, निकल मेरे राज्य से, देखूँ तू किस प्रकार धन-वैभव, राज्यसम्पदा का उपार्जन करता है, तेरी कलाभ्यास तभी समझूंगा जबकि तू इसके बल पर प्रभुता कर राज्य पा सकेगा।'

यह सुनते ही कुमार का वीरत्व जाग उठा। उसे विस्मय अवश्य हुआ, कुछ क्षोभ भी हुआ, क्योंकि बिना अपराध पिता ने धन हरण किया और घर विहीन भी। फिर भी उसने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। उसे विश्वास था अपनी दूरदर्शिता पर, विवेक और विज्ञान पर। वह उठा। पुनः विचार करने लगा — शास्त्र, राजा और वनिता ये तीनों ही अस्थिर-चंचल हैं, इनका विश्वास नहीं करना चाहिए अर्थात् इन्हें ढीला नहीं छोड़ना चाहिए। इनसे सतत् सावधान रहना चाहिए। देखो, शास्त्र का बार-बार अभ्यास चिन्तन मनन करने पर भी चलाचल हो जाता है, विस्मृत हो जाता है। राजा सेवा करने पर भी कब कुपित होगा और कब नहीं, इसका भी पता नहीं चलता और स्त्री भी स्वछन्द छोड़ने पर दूसरे की हो जाती है। ये तीनों सावधानी से सेव्य हैं अर्थात् तीनों पर हमेशा सतर्क रहना योग्य है। जो भी हो, अब मुझे अपना कर्तव्य विचारना है।

इस प्रकार महीपाल उपाय चिन्तन करने लगा—बुद्धिमान पुरुष को लक्ष्मी, स्त्री (वनिता) नृप-राजा और दुर्जन का विश्वास नहीं करना चाहिए। ये चारों ही धोखेबाज हो सकते हैं। ये कब विपरीत होकर अहित कर बैठे, इनका कोई विश्वास नहीं। उपेक्षित होने पर नियम से विपरीत हो जायेंगे। ये चारों स्वार्थी विद्युत बिजली के समान चंचल, पर को ठगने में चतुर हैं।

महीपाल अत्यन्त व्याकुल हुआ, उसने परन्तु धैर्य नहीं छोड़ा। उसने विचार किया, सब कुछ दैव (भाग्य) के हाथ है। कर्मानुसार जीव को अनुकूल या प्रतिकूल सामग्री उपलब्ध होती है। अथवा

यों कहो कि शुभाशुभ का कर्मोदय के अनुसार प्रतिकूल भी अनुकूल, और अनुकूल पदार्थ भी प्रतिकूल हो जाते हैं। राजा का अपराध नहीं है। यह सब मेरे पूर्वोपार्जित कर्मों का फल है। राजा या रानी कौन किसका होता है, कौन किसे सुख-दुःख दे सकता है ? वे सब साता-असाता के उदयानुकूल सुख-दुःख में निमित्तमात्र होते हैं। अब मुझे उद्योग करना चाहिए। भाग्य-दैव के आश्रित रहना ठीक नहीं। समर्थ, साधन जुटाकर कार्यारम्भ करना चाहिए। इस प्रकार महीपाल-राजकुमार विचार कर अपने महल में गया। यथा नाम तथागुण सोमश्री ने अति विनम्र हो पति का स्वागत किया। चन्द्रमा समान आनन्द की प्रदाता शीलवती सोमश्री का मुखचन्द्र खिल रहा था। वह बड़ी उमंग से पतिदेव की राह जोह रही थी। सहसा आये हुए प्रीतम को पाकर उसका हर्षातिरेक बढ़ना स्वाभाविक था। महीपाल ने बड़े प्रेम से उसे हृदय से लगाया और धीमे स्वर में कहा —

प्रिये! आज मुझे अपने पुरुषार्थ की परीक्षा करने जाना है। अच्छा हो कुछ समय तक तुम अपने माता-पिता के पास चली जाओ।

यह सुनकर सहसा सोमश्री सिहर उठी। उसको रोमांच हो आया। यह क्या कह रहे हैं, आप? काँपते स्वर में उसने प्रश्न किया।

कुमार ने कहा — प्रिय घबराओ नहीं भय की आवश्यकता नहीं। मेरे मन में स्वाभिमान जागृत हुआ है। मैं अब समर्थ हूँ। स्वयं योग्य होकर पिता के धन का उपभोग करना कुलीन सन्तान

का कर्तव्य नहीं है। अतः मेरी इच्छा परदेश जाकर धन उपार्जन करने की है। कुछ ही दिनों में अपना स्थान निश्चित कर तुम्हें लेने आऊँगा। हे सौम्य रूपे! चन्द्रवदनी! तेरा विरह अल्पकाल भी सहना मुझे दुस्साध्य है, किन्तु स्वाभिमान रक्षण भी क्षत्रिय का धर्म है, तुम शान्ति से सुखपूर्वक मेरी प्रतीक्षा करते हुए अपने पिता के पास रहना।

हे नाथ! आपकी आज्ञा प्रमाण है, पति परमेश्वर होता है, उसके संकेतों पर चलना सती-साध्वी शीलवती योग्य नारी का कर्तव्य है। पति आज्ञा विमुख नारी पतिव्रत धर्म से रहित होती है परन्तु दुःख और सुख में, घर और वन में, सम्पत्ति और विपत्ति में पति ही नारी का एकमात्र अवलम्बन है। पति संयोग ही नारी का हर परिस्थिति में स्वर्ग है। हे नाथ! मैं एक क्षण भी आपके बिना नहीं रह सकती। चरण स्पर्श करते हुए सोमश्री ने कहा। क्या आप नहीं जानते सुवर्ण की परीक्षा अग्नि में तपकर, वीरभट की परीक्षा संग्राम भूमि में, तुरंग की परीक्षा गमन में, नृप की न्याय में, बन्धुजनों की विपत्ति आने पर एवं दातार की दुर्भिक्ष पड़ने पर परीक्षा होती है। उसी प्रकार नारी की परीक्षा निर्धनपने (आपत्ति काल) में होती है। हे पतिदेव! यह मेरी परीक्षा का समय है, आप मुझे परीक्षा देने से वंचित न करें। आपकी अर्धांगिनी क्या परीक्षा में असफल हो सकती है?

हे देव! जिस प्रकार चन्द्रिका चन्द्रमा का, लक्ष्मी धर्म का, छाया शरीर का, मछली जल का वियोग सहने में समर्थ नहीं; उसी प्रकार पतिव्रता नारी पति वियोग सहने में कदापि समर्थ

नहीं हो सकती। जो वनिता (स्त्री) पति को (स्वामी) को निर्धन और दु:खी छोड़कर स्वयं पिता के घर रहकर सुखोपभोग करे, वह वेश्या के समान है। पतिव्रता ललना तो महासती सीता के समान वन-वन में भटककर अपने को सुखी और धन्य समझती है। मुझे आपके साथ निर्जन वन भी गुलजार उपवन होगा। हे देव! मुझे मेरे कर्तव्य से च्युत क्यों करना चाहते हैं? मैं आपके धर्मानिष्ठादि कार्यों में सहयोगिनी हूँ, उसी प्रकार लौकिक क्रियाओं में भी सहायिका हूँ। मैं अवश्य आपके साथ ही रहूँगी। करबद्ध, अश्रुविगलित नेत्रों से पति का मुखकमल निहारते हुए सोमश्री ने गद्‌गद्‌वाणी में कहा और चातक की भाँति उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

सोमश्री बात सुनकर महीपाल का हृदय काँप उठा। वह अपनी सच्ची सहयोगिनी पाकर फूल उठा और कुछ विचारते हुए साथ चलने की अनुमति प्रदान की।

परदेश गमन—नाना प्रकार तरंगों में निमग्न महीपाल जा रहा है। न कुछ पास है, न कोई साथ है। मात्र दोनों (दम्पति) एक-दूसरे के सहारे बढ़े चले जा रहे हैं। कहाँ जाना है, किधर पहुँचना है, क्या करना है? कुछ पता नहीं, बस चलना ही है। न भूख की चिन्ता, न प्यास का विचार, न सम्मान की भूख; हाँ, धर्म की पिपासा अवश्य है। मनुष्य जन्म की अमूल्य निधि व्रत, शील, संयम की अवश्य उन्हें चिन्ता है। बेरोक-टोक वे दोनों ही कुछ दिनों में भृगुकच्छपुर में पहुँचे।

कई दिनों की थकान थी, आँखों में नींद घुली हुई थी। कुछ

समय विश्राम किया। सरोवर का शीतल जल पिया। अनन्तर अत्यन्त भक्ति से णमोकार महामंत्र का जाप कर हृदय में जिनेन्द्र प्रभु का ध्यान करते हुए दोनों ने पुर प्रवेश किया।

शुभोदय से उसी दिन सागरदत्त श्रेष्ठी अनेकों व्यापारियों के साथ व्यापार के लिए जा रहे थे। कुमार ने देखा और विचार करने लगा, पराई चाकरी अधमवृत्ति है। पिता की सेवावृत्ति भी धोखा दे तो फिर दूसरों के आश्रय रहने में कहाँ सुख मिल सकता है? कृषि कर्म भी मध्यम श्रेणी में है। किन्तु व्यापार करना वाणिज्य वृत्ति महा उत्तम है। अतः इससे अपना काम बनाना चाहिए। अब अन्य द्वीप में जाकर व्यापार करना चाहिए। सर्व कार्य साधक सिद्धों को नमस्कार कर, पंचपरमेष्ठी का ध्यान करता हुआ निर्मल हृदय कुमार महीपाल सागरदत्त सेठ के पास गया। नम्रतापूर्वक उससे जाने का कारण व स्थान का नाम पूछा।

अत्यन्त सौम्य, सरल स्वभावी, सुन्दर, बुद्धिमान कुमार को देखकर सेठ का हृदय कमल विकसित हो उठा। अनायास हर्ष की लहर दौड़ पड़ी। अति स्नेह से सेठ ने कहा, 'मित्रवर! मैं यहाँ का सागरदत्त नाम का श्रेष्ठी हूँ और कटाह द्वीप व्यापार के लिये जा रहा हूँ।'

'बड़ी प्रसन्नता की बात है। यदि आपको किसी प्रकार का कष्ट या असुविधा न हो तो मैं भी सपत्नीक आपके साथ जाना चाहता हूँ।' अति विनम्र किन्तु स्वाभिमानपूर्वक कुमार ने पूछा।

सागरदत्त तो देखते ही उसके गुणों पर मुग्ध हो चुका था। उसके वचन सुनकर परमहर्ष के साथ चलने की अनुमति प्रदान

कर दी। उसी क्षण कुमार महासती सोमश्री भार्यासहित जहाज पर आरूढ़ हो गया, सेठ ने शुभ मुहूर्त पर उत्साहसहित प्रस्थान किया, जहाज चलने लगा।

★ ★ ★

हैं! यह क्या हुआ?

जहाज के ऊपरी भाग में सुसज्जित स्थान पर बैठा महीपाल नाना प्रकार के कौतूहलों से प्रिया का मनोरंजन करते हुए विविध प्रकार की क्रीड़ा करने लगा। कभी समुद्र की उत्ताल तरंगों की गणना करने की चेष्टा करता तो कभी कई एक भवनों की रमणीयता को निरखता है। कोई जल को माप रहा है, कोई ध्रुवतारा अवलोकन कर रहा है, कोई वर्त को चला रहा है, कोई जहाज में प्रविष्ट जल को बाहर फेंक रहा है, कोई आकाश की निर्मल भित्ति पर बने अनोखे मेघ चित्रों का निरीक्षण कर रहा है। इस प्रकार महीपाल अपनी प्रिया को नाना चित्र दिखा रहा है। पवन अनुकूल बह रही थी। इसलिए थोड़े ही दिनों में जहाज कटाह द्वीप के समीप जा पहुँचा। किन्तु अरे! यह क्या हो गया? कोई जहाज में घुस आया, देखते-देखते वह मस्तूल पर चढ़ गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। उसने बड़े प्रयत्न से गगनचुम्बी मस्तूल पर चढ़ चिल्ली निकाल दी। जहाज में जल प्रवेश होने लगा, तरंगों के बीच जहाज डगमगाने लगा। संकट काल देख सभी व्यापारीगण अपने-अपने इष्ट देवों का स्मरण करने लगे। कोई श्री परम वीतराग

अरहन्त परमेष्ठी का नामोच्चारण करने लगा तो कोई अपने-अपने आराध्य के आह्वान में जुट गया। कई मित्रजनों का स्मरण करने लगे। कुछ भाई-बन्धु, कुटुम्बियों को याद कर हाय-हाय करने लगे। कुछ ही क्षणों में उस दुर्जन ने जहाज की अन्तःसन्धियों का भेदन कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। **जैसे कोई विश्वासघाती मित्र एकान्त की रहस्य घटनाओं को प्रकट कर देता है।** सब ही व्याकुल थे, अवसर पाकर जहाज के खण्डों को ले लेकर नर-नारियाँ तैरने लगे। मरता क्या नहीं करता? सभी को प्राणों की चिन्ता थी। यत्र-तत्र दिशाओं में भटकने लगे। जीवित आशा विहीन सागर की उत्ताल तरंगों के साथ युद्ध करने लगे। कर्म की गति बड़ी विचित्र है। पुण्य-पाप का खेल बड़ा अनोखा है।

राजकुमार महीपाल पंचपरमेष्ठी का ध्यान करता हुआ एक फलक (काठ) का सहारा ले पाँच दिन के बाद सागर के तीर आया। उस समय उसका हाल-बेहाल था। भूख से पीड़ित, पिपासा से शुष्क कण्ठ, वस्त्र विहीन, एकाकी, निस्सहाय, अत्यन्त श्रमित (थका) किसी प्रकार प्राणों का रक्षण कर रहा था। उसका धैर्य मन्द नहीं था। मस्तिष्क कुण्ठित नहीं था, भय का लेश भी नहीं था। उसने विचारा कि यह सब दुर्दैव की लीला है। वह मन में सोचता है। मन में क्या सोचता है? अहो दैव! तू बड़ा निर्दयी है, पिता से तिरस्कृत कराया, बन्धु-बान्धव का वियोग कराया, परदेश गमन कराया और अब एकमात्र प्रिया को बिछोहा कराकर यहाँ ला पटका। जो भी हो, मैं डरूँगा नहीं। तू जो-जो करेगा, सब सहूँगा। इस समय मेरा भाग्य प्रतिकूल है, जो भी उपाय

करता हूँ यह विफल कर देता है। कुछ भी हो मुझे पुरुषार्थ करना ही चाहिए। व्यर्थ ऊहापोह करने से क्या प्रयोजन? पुरुष को पुरुषार्थ—उद्योग में संलग्न रहना चाहिए। भाग्य को मेटा नहीं जा सकता, परास्त किया जा सकता है। दैव की शक्ति कम नहीं। कवीश्वर भी इसका वर्णन नहीं कर सकते हैं, जिसे स्वप्न में भी न जाना जाये, उसे दैव क्षणभर में ला उपस्थित कर देता है।

★ ★ ★

महीपाल का तत्त्वचिन्तन

एकाकी कुमार तीर पर बैठा। वायु के शीतल झोकों से कुछ शान्ति मिली, क्षणभर विचारकर आगम चिन्तन में लगा, यह सब मेरे पूर्वार्जित कर्मों का फल है, मैंने पूर्वजन्म में अखण्ड पुण्योपार्जन नहीं किया था, इसी से यह संकट आ गया। कई बार मैंने श्री गुरुओं-निर्ग्रन्थ मुनिराजों के मुखारविन्द से सुना कि पुण्य-पाप का फल जीव को भोगना पड़ता है। उन्होंने कथा भी सुनाई थी कि—

सिंहपुर नाम का नगर था। जहाँ करोड़ों दीनारों का अधिपति सेठ देवद्वार रहता था, उसे राज्य सम्मान और लोक सम्मान भी प्राप्त था। किन्तु अभिमान उसे छू भी नहीं गया था। दानियों में दानी था। हजारों विशाल जिनभवन निर्माण कराये थे। जिनमें अनेक सुवर्ण, चाँदी आदि के जिनबिम्ब प्रतिष्ठायें कराई। चतुर्विध संघ (मुनि, अर्जिका, श्रावक और श्राविका) मुनि, ऋषि, यति,

अनगार ये भी चतुर्विध संघ कहलाता है इन्हें सतत् आहारदान देता था। साधु संघ आचार्य संघों को लेकर तीर्थयात्रा को जाता। फलतः उस देवद्वार सेठ के घर चन्द्रमा की कला के समान लक्ष्मी बढ़ने लगी। सुख में निमग्न वह सेठ हजारों वर्षों के काल को एक दिन समान गिनता समय यापन करने लगा। भाग्य की विडम्बना पुण्य के क्षय होने से सब अनुकूल भी प्रतिकूल हो जाते हैं, समय एकसा नहीं रहता, कहा भी है—

सदा न फूलै केतकी सदा न सावन होय।
सदा न सुखिया सुख रहे सदा न जीवे कोय॥

भाग्य ने करवट बदली, पुण्य क्षीण हुआ और देखते ही देखते लक्ष्मी विलीन हो गयी, जैसे मेघ की काली घटा वायु के झकोरे से विलीन हो जाती है। सेठ विचार निमग्न हो गया कि यह अचानक क्या हुआ? क्यों हुआ? क्या-क्या करना चाहिए? उदर पूरण किस प्रकार होगा? कहाँ जाऊँ — इत्यादि प्रश्न एक साथ मस्तिष्क में गीले ईंधन की धुँआ के समान घुमड़ने लगे। संभवतः आपको भी उत्सुकता होगी कि आखिर क्या हुआ? 'यदि है तो लो पाठकगण वह भी कारण सुन लो' जितने जहाज जलधि पर तैर रहे थे। वे तो सागर की उत्ताल तरंगों में उलझकर रत्नाकर में समा गये। बाजार में बिखरी सम्पत्ति अग्नि देवता की आहुति बन गये, अर्थात् भयंकर अग्निकाण्ड में जलकर भस्त हो गयी। महलों का वैभव तस्करों (चोरों) की भेंट हो गया। भूमि में गड़े धन के मालिक व्यन्तर देव हो गये। इस प्रकार चारों ओर से दुर्भाग्य ने किलाबन्दी कर ऐश्वर्य जप्त कर लिया। बेचारा

देवद्वार सेठ परेशान हो गया और राजा के पास गया, 'तीसरे साल आपका धन डेढ़ गुना करके दे दूँगा।' इस शर्त पर एकलक्ष दीनार ले आया। धान्य खरीदा। उदर भरा। समय की गति तो अजब है। पलक झपकते ही तीसरा वर्ष आ गया। वाह रे वाह 'पड़े पर दो लात लगाई' वाला हिसाब हुआ। भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। धान्य महँगा हो गया, तेजी की तीक्ष्ण धारा से निरपराध दीन गरीब जन छिन्न-भिन्न आतुर हो उठे। देवद्वार सेठ भी राजा को उचित समय पर दीनार नहीं दे सका। फलतः राजा ने उसे बन्दीगृह में डाल दिया। अन्य कुटुम्बीजन राजभय से इधर-उधर भाग गये। सत्य है—

किसी ने कहा है—

सुख के सब लोग संगाती हैं
दुःख में कोई काम न आता है
जो सम्पत्ति में आ प्यार करे
वह विपद में आँख दिखाता है।

अर्थात् पुण्य के उदय पराये भी अपने हो जाते हैं, स्वजन बन्धु-बान्धव की क्या बात? परन्तु पुण्य क्षय होने पर आपदा के समय कोई भी भाई, बन्धु, कुटुम्ब, परिवार सहायक नहीं होते हैं। अपितु उलटा 'जले पर नमक छिड़कना' कहावत को सार्थक बनाते हैं।

★ ★ ★

श्री पंच परमेष्ठी के मन्त्र का चमत्कार

बेड़ियों में जकड़ा, कारागार में बन्द क्षुधा–तृषा से पीड़ित देवद्वार सेठ के समक्ष संसार की स्वार्थ वृत्ति प्रकट हो रही थी, संसार की असारता, पुण्य की क्षणभंगुरता, बन्धु–बान्धवों का थोथा स्नेह उसके हृदय में टीस पैदा कर रहा था। वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा था। कया करूँ? कहाँ जाऊँ? किससे अपनी मुक्ति का उपाय पूछूँ? इत्यादि प्रश्न मस्तिष्क में घूम रहे थे। उसका विवेक जागा। अन्तरज्योति ने मार्ग दर्शाया। वह उछल पड़ा। नाचने लगा। ठीक ही है दुःख की निवृत्ति ही तो हर्ष है— आनन्द है। वह उठा, ऊपर की ओर देखा। मस्तक झुकाया। सिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार किया। ठीक है महामन्त्र णमोकार ही एकमात्र मेरा अवलम्ब है। इस अनादि मूलमन्त्र की अपार शक्ति है। पूर्वाचार्यों ने कहा भी है कि —

विश्लियन् घनकर्मराशिमशनिः संसार भूमिभृतः।
स्वर्निर्वाणपुर प्रवेश गमने निः प्रत्यवायः सतां॥
मोहान्धाटवसंकटे निपततां हस्तावलम्बोर्हतां।
पायान्नः सचराचरस्य जगतः संजीवनं मंत्रराड्॥

अर्थात् अनादि से संचित कर्मराशि से पीड़ित भव्यजीवों के कर्मसमूहों को विध्वंश करने के लिए यह नमस्कार मन्त्र वज्र समान है, मोक्षभिलाषी तपस्वीजनों को स्वर्ग–मोक्ष नगर में ले जानेवाला सफल पाथेय है। मोहतिमिर से व्याप्त संसार अटवी में पड़े संकटों से व्यथित जीवों को हस्तावलम्बन है, यह मन्त्र राजसंजीवनी बूटी है, जिसके सेवन से जन्म–मरण की भयंकर

व्याधि नष्ट हो जाती है। हे मन्त्रराज! आप ही मेरे रक्षक हैं। आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ।

श्रद्धायुक्त जितेन्द्रिय-इन्द्रिय विषयों पर विजय कर शुद्ध मन से जो भव्यात्मा इस मन्त्र का शुद्ध व स्पष्ट उच्चारण करता है। जिनेन्द्र प्रभु के चरणों में रक्त-लीन हृदय होकर एकाग्रचित्त एक लक्ष जाप करता है, वह भव्य सर्वोत्तम तीर्थंकर पदधारी होकर मुक्तिरमा का वरण करता है। श्रेष्ठ विधि से मुझे भी यही करना चाहिए। क्योंकि इसके जाप से अगाध सागर का, मदोन्मत्त गजराज, सिंह असाध्य रोग, अग्निभय, शत्रुभय, चोरग्रह, चित्त विभ्रम, पिशाचराक्षस, भूत, डाकिनी, शाकिनी इत्यादि का भय क्षण मात्र में नष्ट हो जाता है। इसलिए त्रिकरण—मन, वचन और काय शुद्ध कर एकाग्रचित्त से महामन्त्र का जप करूँ, इससे बढ़कर तीन लोक में दूसरा मन्त्र नहीं है।

इस प्रकार दृढ़ श्रद्धा की। तीनों योगों को शुद्ध कर जिनेन्द्र प्रभु का ध्यान करते हुए पंचपरमेष्ठी का स्मरण पूर्वक सेठ ने एक लक्ष नवकार महामन्त्र का जाप किया। मन्त्र प्रभाव से और पुण्योदय से उसके जटिल बन्धन तड़-तड़ टूट गये, ताला खुल गया, द्वारपालों को आकल निद्रा ने दबा लिया। स्वयमेव द्वार खुल गये। वह देवद्वार कारागार से निकल गया। वाह रे मन्त्रराज! तेरा मंगलमय आह्वान कर्म कलंक का नाश करने में समर्थ है। फिर बेड़ियाँ कट जाना, द्वार खुल जाना, क्या बड़ी बात है ? यह मन्त्रराज परमपूज्य है। स्मरणीय है। उभयलोक की शान्ति का आधार है। इसका ध्यान आत्मा सिद्धि का साधन है, स्वर्ग का

सोपान है और लौकिक जीवन में सुख-शान्ति का निर्मल सुधास्तोत्र है। यह मधुर मिश्री का डला है। जिसे जब खाओ तब, जिधर से खाओ उधर से हर हालत में मिठास ही प्रदान करता है। अतः प्रतिक्षण मन्त्रराज का जाप करते रहना चाहिए।

धर्मोपदेश लाभ—देवद्वार सेठ चला जा रहा था। प्राण बचे लाखों पाये। भय मिश्रित हर्ष से व्याप्त चित्त वह भागता हुआ महान अटवी में पहुँचा। पर्याप्त थक चुका था, किन्तु हल्की सी चिन्ता हुई किन्तु तत्क्षण ही विलीन हो गयी। तत्क्षण अरहन्त के पुण्य परमाणुओं का सानिध्य पाकर भयानक अटवी सुरमय उपवन सी शोभित हो रही थी, मन्द सुगन्ध पवन के झोकों ने उसके श्रम सीकरों को सुखा दिया। शीतल वायु ने सूखे कण्ठ में मानों अमृत डाल दिया। उसका भय आश्चर्य में बदलने लगा। अचानक उसे बहुत विशाल सभा मण्डप दिखाई दिया। यह तो समवसरण है, हर्षोत्फुल्ल हो दौड़ा और सीधा पहुँच गया श्री मण्डप (गन्धकुटी) में जहाँ केवली भगवान रत्न जड़ित सुवर्ण सिंहासन पर अन्तरिक्ष (चार अंगुल अधर) में विराजमान थे। भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। मनुष्यों के कोठे में बैठ गया। द्विविध धर्म का यथावत् स्वरूप सुना। अवसर पाकर हाथ जोड़कर नमस्कार कर श्री केवलीप्रभु से प्रार्थना की, हे त्रिलोक्याधिपति प्रभो! पूर्व भव में ऐसा कौन सा शुभाशुभकर्म बन्ध किया कि जिसके फलस्वरूप यहाँ मुझे सुखी-दुःखी होना पड़ा?

करुणासागर प्रभु कहने लगे — हे भव्यात्मन्! तू पूर्व भव में वणिक-बनिकों का सुत था। धर्म-ध्यान और दान-पूजा में सदा

तत्पर रहता था। पुण्यवान होने पर भी बीच में असाता का उदय आने से शरीर में असाध्य पीड़ा हो गई। अनेक मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र प्रयोग किये, औषधादि का भी प्रयोग किया परन्तु किसी प्रकार की शान्ति नहीं मिली। शरीर सूखकर कांटा हो गया। उसका धैर्य टूट गया। श्रद्धा हिल उठी। मन विचलित हो उठा। वह विचार करने लगा, मैंने निरन्तर धर्म सेवन किया और अब भी धर्म सेवन में लीन हूँ, परन्तु पीड़ा तनिक भी शान्त नहीं हुई। क्या धर्म फल मिथ्या है ? मुझे तो यही भासता है कि धर्म की चर्चा व्यर्थ है, धर्म करके ही मेरी यह दुर्दशा हुई है, अब भविष्य में धर्मानुष्ठानादि नहीं करूँगा। ठीक ही है कामला रोगी (पीलिया) को शुभ्र सफेद शंख भी पीला दिखाई देता है। मिथ्यात्व के उदय से वणिक पुत्र को धर्म फल के सन्दर्भ में भ्रान्ति हो गयी। वस्तुतः शारीरिक अनुकूलता-प्रतिकूलता तो पुण्य-पाप का फल है। धर्म का फल तो अतीन्द्रिय आनन्द है। भ्रम बुद्धि से जीव-जन्तु वस्तुस्वरूप को भूल जाता है। कुत्ता का स्वभाव लाठी मारनेवाले को काटने का नहीं, अपितु लकड़ी पर झपटने का है। उसी प्रकार अज्ञानतम से पीड़ित उसने पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म की ओर तो दृष्टि नहीं डाली, वर्तमान में संचित पुण्यराशि को कोसने लगा। हाय-हाय कर आर्त परिणामों से कुमरण किया और सज्जन वणिक पुत्र मरकर तू इसी सिंहपुर में (देवद्वार) सेठ हुआ। प्रथम पुण्योपार्जन किया था, इससे तो धन सम्पदा वैभव प्राप्त हुआ और असाता के उदय में अज्ञानवश धर्म की निन्दारूप अशुभभावों के कारण तुझे दुर्निवार विपत्ति का सामना करना

पड़ा। हे वत्स! यदि धर्म की निन्दा अविनय नहीं करते तो आपदा नहीं आती, निज अपराध से जीव को दारिद्रयादि का कष्ट उठाना पड़ता है। अखण्ड धर्म सेवन से अखण्ड सुख प्राप्त होता है। वीतराग वाणी के प्रभाव से देवद्वार सेठ का हृदय कांप उठा। संसार भय से भयभीत हो निजानुभूति की ओर बढ़ा। बस क्या था, उसे जातिस्मरण हो गया। वैराग्य आ गया। नश्वर संसार की विडम्बना उसके सामने नाचने लगी। संसार, शरीर, भोगों से विरक्त हो जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। कठोर तपश्चरण की अग्नि में आत्मा को तपाकर कुन्दन बनाया। ध्यानाग्नि से कर्म कलंक का मूलोच्छेद कर कैवल्य प्राप्त किया और कुछ ही समय में अविनश्वर मुक्ति प्राप्त की।

इस प्रकार महीपाल राजा आगम वाक्यों का स्मरण करने लगा। हाय-हाय मैंने भी देवद्वार की भाँति अखण्ड पुण्योपार्जन नहीं किया, जिनेन्द्र प्रभु की निरन्तराय उपासना नहीं करने से ही यह पाप उदय आया है। माता-पिता का वियोग, धन सम्पत्ति का वियोग और सर्वोपरि यह कि परदेश में प्राण प्रिया का वियोग हो गया। जिनशासन का यही सार है, अपने-अपने शुभाशुभ कर्मानुसार जीव को सुख-दुःख भोगना ही पड़ता है। अमितगति स्वामी ने कहा है—

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्याऽपि ददाति किंचन्।
विचार यन्नेव मनन्य मानसः परोददातीति विमुच्य शेमुशीम्॥

अपना किया कर्म फल देकर ही छूटेगा। हाय.. हाय अब मेरे तीव्र असाता उदय में आया है। कुटुम्ब-परिवार, धन-सम्पत्ति

तो पुनः मिल सकती है, परन्तु मेरी प्राण प्रिया का मिलना असम्भव है। जो भी हो, अब मुझे सावधान होना चाहिए। तकदीर के साथ तदवीर जोड़ देने से उसका बोलवाला ठण्डा पड़ जाता है। चलूं, कोई उपाय करूँ। वह विचार सागर में निमग्न हो, धीरे-धीरे चला। हृदय में पंचपरमेष्ठी का ध्यान करता हुआ एक कमलों से व्याप्त शीतल जलपूर्ण सरोवर पर पहुँचा। प्रसन्न होकर स्नानादि कर निर्मल स्वच्छ दुपट्टे (कपड़े) से छानकर जल पिया। आगे कौनसा नगर है? यह कौनसा द्वीप है? इत्यादि विचार करते हुए सरोवर तट पर विश्राम करने लगा।

''कविराज चारित्रभूषण द्वारा रचित
महीपाल चरित्र में प्रथम संधि समाप्तम्॥''

★ ★ ★

अथ द्वितीय सन्धि

महीपाल शीतल वायु के स्पर्श से शान्ति का अनुभव करने लगा। इसी समय एक सुन्दर सुसज्जित वेशभूषा धारी महात्मा पुरुष आया। उससे पूछने पर उसने कहा कि वह कटाह द्वीप है और रत्नपुर नगर है। बैरोसिंह यहाँ का नृपति है। वस्तुतः शत्रुरूपी हिरणों के लिए वह सिंह समान पराक्रमी है। इस प्रकार नगर, राजादि का परिचय प्राप्त कर महीपाल ने शुभ शकुनों के साथ नगर में प्रवेश किया।

शुभ चिह्नों से उसे विश्वास हुआ कि अवश्य यहाँ मुझे विशेष

लाभ होगा। इस नगरी की सुषमा निराली थी। भवनों की छटा कलाकारों का यशगान कर रही थी। बाजार में लगी रत्नराशि वहाँ के राजा का ऐश्वर्य प्रदर्शित कर रही थीं। व्यापारियों की चहल-पहल और धूमधाम वहाँ के व्यापारियों का परिचय दे रही थी। महीपाल आश्वस्त हो एक सागर नामक श्रेष्ठी की दुकान पर बैठ गया। उसी समय एक व्यापारी ने 500-500 रुपये के मोती दिखाये महीपाल ताड़ गया। सेठ से कहा यह मोती बेशकीमती हैं। आप ले लें। परन्तु सेठ को परदेशी की बात पर विश्वास नहीं हुआ।

व्यापारी चल पड़ा। महीपाल को ठेस लगी। इतना सस्ता माल उपेक्षा कैसे करें? उसे बुलाया। मोल पक्का कर रत्न ले लिये। कुछ दूर जाकर अन्य जौहरी के यहाँ उन्हें एक-एक हजार में बेच दिया। 500 रुपये प्रति मोती के हिसाब से उसने व्यापारी को मूल चुका दिया, बाकी रुपये सागर सेठ को दिखलाए सेठ को बड़ा विस्मय हुआ। उसने महीपाल का सम्मान कर अपने यहाँ रहने की प्रार्थना की। आश्चर्य से भरे सेठ ने विनम्रता से उसका नाम, गाँव, आने का कारण पूछा। कुमार ने भी अपना उद्देश्य सिद्ध होता जान आद्योपान्त सारा वृत्तान्त यथावत् बतलाया। सेठ ने स्नेह से महीपाल को अपनी दुकान पर स्थान दिया। सेठ की आज्ञा प्रमाण महीपाल व्यापार करने लगा। सागर सेठ की एक मास की कमाई कुमार की कुशलता से एक दिन में ही आने लगी। संसार की कहावत है—'कामला सो लाडला' अर्थात् कर्मठ व्यक्ति सर्वजन प्रिय हो जाता है। सागर सेठ पुत्र से भी

अधिक उसका आदर सम्मान करने लगा। नीति है कि 'विद्वान पंडित, रूपवती नारी, पराक्रमी सुभट, मोती-मणि और गुणी कलावान पुरुष संसार में जहाँ जाता है, वहीं आदर और यश-सुयश प्राप्त करता है। महीपाल का यश चारों ओर फैलने लगा।

एक दिन राजा ने समस्त जौहरियों (रत्न पारखियों) को बुलाया। महीपाल कुमार भी सागर सेठ की आज्ञानुसार राजसभा में उपस्थित हुआ। सभी सेठों ने यथायोग्य राजा को नमस्कार किया। अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये। रत्नपारखी कलाकार महीपाल भी महामन्त्र का जाप करता हुआ बैठ गया।

राजसभा भरी है। राजा सिंहासन पर आसीन हैं। व्यापारी भाई अपने बेचनेवाले रत्नोंसहित उपस्थित हैं। नृपति ने उनके द्वारा लाये तीन रत्नों को थाल में देते हुए कहा, अय वणिकगण हो! ये रत्न मैं लेना चाहता हूँ। आप लोग इनकी परीक्षा कर योग्य मूल्य निर्धारित करो।

बैरीसिंह भूपाल की आज्ञानुसार सर्वश्रेष्ठी गणों ने रत्नों की कान्ति आकार, रूप, हलका, भारी आदि गुणों की परीक्षा की और पृथ्वीपति से बोले, हे राजन्! यह एक दाना 100 (एक सौ) रुपये का है, एक दूसरा दाना (मोती) 50 रुपये का मूल्यवाला है। और तीसरा कान्तिहीन रत्न कोई मूल्य नहीं रखता। महीपाल कुमार यह सब सुनता रहा। परन्तु उनके विपरीत कथन को सह नहीं सका। एकाएक बिना पूछे बोलना भी उचित नहीं, सोचकर सिर हिलाया। हाथ से धुना और नीचे भूमि को देखने लगा। राजा उसकी चेष्टा ताड़ गये। अवश्य ही कोई विशेष कारण है। यह

कुमार भी विशेषज्ञ प्रतीत होता है। इसका परिचय अवश्य पूछना चाहिए। उसी समय राजा का अभिप्राय जानकर सागर सेठ ने कहा, राजन्! यह विशेष कलाकार मोतियों का चतुर पारखी है। यह श्रवण कर राजा ने सभा विसर्जन कर कुमार को अपने पास बुलाकर सिर धुनने का कारण पूछा।

महीपाल ने नम्रता से उत्तर दिया, इतने बड़े-बड़े गुणज्ञ सेठों के समक्ष मेरी क्या योग्यता है। आप कोई सेवा हो तो कहिए। पुनः राजा ने आग्रहपूर्वक उस कुमार से अधोमुख करने का कारण पूछा। कुमार ने विनयपूर्वक उत्तर दिया — राजन्! सभी सेठों ने मोतियों का विपरीत मूल्य एवं गुण बतलाया है। जिस मोती को मूल्यहीन कान्तिहीन कहा है, उसका मूल्य एक लक्ष दीनार है। कारण इसके रखने पर किसी प्रकार की कोई ईति, भीति, शाकिनी, डाकिनी, भूत, पिशाच, राक्षस आदि का भय नहीं रहता है। किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं आता है। परीक्षार्थ आप एक थाल भरकर चावल मंगाइये। तदनुसार करने पर उसके बीच में वह मोती रख दिया। देखते-देखते बहुत से पक्षी आये किन्तु उस मोती के प्रभाव से कोई भी उस थाल के पास नहीं आ सका। सभी उड़ गये। राजा को विश्वास हो गया वास्तव में यह मोती वेशकीमती है। निरर्थक मोती का यह प्रभाव देखकर भूपति बहुत प्रसन्न हुआ और उस मोती को थाल से उठा लिया। तब क्षण भर में सैकड़ों पक्षी आ गये। जब तक थाल में मोती रहा सभी मन्त्रबद्ध से दूर रहे। मोती का प्रत्यक्ष चमत्कार देखकर हर्षित और आश्चर्यान्वित भूपाल ने अन्य मोतियों की परीक्षा के

लिए आदेश दिया। तब महीपाल ने दूसरा मोती जिसका 100 रुपये बतलाया था कहा कि यह एक कौड़ी का भी नहीं है। हे राजन्! इस मोती का नाम गर्भनीर है। जिस समय सीप ने समुद्र का खारा जलपान किया उसके दूसरे ही क्षण स्वाति नक्षत्र का जल भी पी लिया। उसी मिश्रण से यह मोती पैदा हुआ है, इसलिए इसकी गर्भनीर संज्ञा है। अतः इसका कोई मूल्य नहीं।

तीसरा मोती जिसका मूल्य 50 रुपये कहा था, सो यह भी निरर्थक है, इसका कुछ भी मूल्य नहीं है। कारण कि इस मोती के गर्भकाल में लघु, उर्द्धता के दोष से यह मोती स्वामी को भय और हानि करनेवाला है। देखिये, मैं इस मोती की उत्पत्ति बतलाता हूँ। यह ताम्रपर्णा नदी में हुआ है। ताम्रपर्णा के पंक मिश्रित जल को सीप ने पी लिया, पुनः स्वाति नक्षत्र का जलपान किया। उस कीचड़ मिले पानी से पेट में मेंढकी उत्पन्न हो गयी। वह मेंढकी आज भी इस मोती के अन्दर है। राजा ने उसी क्षण मोती को तुड़वाकर प्रत्यक्ष उस मेंढकी को देखा। उसे आश्चर्य के साथ महीपाल की तीक्ष्ण पारखी बुद्धि को जानकर अत्यानन्दित हुआ। प्रसन्न होकर राजा ने उसे नाना वस्त्रालंकार पहनाकर सम्मानित किया। समस्त जौहरियों को बुलाकर उसकी बुद्धि कौशल का प्रदर्शन किया। कहा, देखो, समुद्र के अथाह जल की भी सीमा है, लाखों योजन विस्तारवाला होने पर भी सागर असीम नहीं है। आकाशगामी मार्तण्ड का भी क्षेत्र (गमन क्षेत्र) सीमित है, अन्य आश्चर्य-कारक वस्तुएँ हैं, परन्तु सत्पुरुषों के ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। यह तो सर्वोत्कृष्ट सर्वोपरि विराजमान रहता है।

राजा द्वारा अतिसम्मान पाने पर भी कुमार को तनिक भी अहंभाव (घमण्ड) नहीं हुआ। विनय से नम्रीभूत सागर सेठ के यहाँ न्यायोचित व्यापार कर अपना उज्ज्वल यश बिखेरने लगा।

वैरीसिंह—पृथ्वीपति के अथर्णव एवं गुणधवल नाम के दो मन्त्री थे। वह गुणधवल यथार्थ में गुण, रूप सौन्दर्य से भी धवल था। उसकी प्राण प्रिया का नाम गुणश्री था। गुणश्री न्यायोचित उत्तम गुणों से सज्जित और परम लावण्य से मण्डित थी। वह शील शिरोमणि पतिव्रता धर्मयुक्त सती शिरोमणि थी। किसी समय बसन्त ऋतु का आगमन होने से वह वन विहार के लिये गयी, साथ में अनेक दासियाँ थीं। क्रीड़ा करती हुई दैवयोग से उसने एक जीर्ण-शीर्ण मन्दिर में प्रवेश किया। वह किसी मिथ्यादृष्टि यक्ष का भवन था। गुणश्री को देखते ही यक्ष कामवासना से विद्ध हो गया। काम विहल यक्ष गुणश्री को बलात् कर (हाथ) ग्रहण कर कहने लगा, अहो! सुन्दरी! आपका भव्य रूप देखकर मेरे नेत्र आज सफल हो गये। मैं धन्य हो गया। परन्तु कामदेव को पीड़ा से मन अधीर होता जा रहा है। मेरी कामबाधा से उत्पन्न दाह की शान्ति तेरे शरीर के स्पर्शमात्र से होगी। यही औषधि है। हे सौम्यवदनी अहोरम्य जंघा धारिणी! ये बहुमूल्य आभूषण तू ग्रहण कर और मुझे मधुर वचन प्रदान कर। तेरे शरीर सम्भोग से मेरा काम सन्ताप शीघ्र शान्त हो जायेगा। कुचेष्टा भरा हास्य करता हुआ यक्ष आगे बढ़ा। गुणश्री ने फटकार लगाई, बोली — रे दुष्ट पाजी! संसार में कौन ऐसा दुष्ट, नीच, पापी, देव, दानव, मनुष्यादि है जो सतियों के शील को स्पर्श करे। फिर तू तो देव

है तेरे वैक्रियकशरीर है। देव, दानव औदारिकशरीरधारी स्त्रियों के सेवन की अभिलाषा नहीं करते हैं। तू लम्पटी, पापी, अधम है जो ऐसी पापमय बातें कर रहा है। विषयासक्त यक्ष का विवेक नष्ट हो गया, बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। विषयान्ध बोला — हे भमिनी! तू सम्पूर्ण विकल्प जाल छोड़ और रतिदान प्रदान कर मुझे कृतार्थ कर।

सच है नीतिकार कहते हैं—

विषयासक्त चित्तानां गुण को वा न नश्यति।
न वैदूष्यं न पण्डित्यं, न नाभिजात्यं न सत्यवाक् ॥

अर्थात् विषय भोगों में अतिग्रद्धता रखने से महा श्रेष्ठ उत्तम गुण भी नष्ट हो जाते हैं। विद्वत्ता, कुशलता, धर्मज्ञता सत्य भाषण आदि प्रमुख सुगुण विपरीत हो जाते हैं या नष्ट हो जाते हैं। अवधिज्ञानी (विभंगावधि ज्ञानी) होते हुए भी यक्ष विषयान्ध हो सामान्य सत्री पर मुग्ध हो गया।

गुणश्री शेरनी की भाँति गरजी, रे अधम यक्ष! दूर रह, क्या तू नहीं जानता कि सती साध्वी स्त्री के लिए एक पति के अतिरिक्त इन्द्र, धरणेन्द्र, असुरेन्द्र, नरेन्द्र (चक्रवर्ती) आदि सभी त्याज्य हैं। इनमें किसका साहस है जो अखण्ड शीलवती का व्रत खण्डन कर सके। अरे पापी! याद रख, कदाचित सूर्योदय पश्चिम में होने लगे, रत्नाकर अपनी सामी छोड़ दे, अग्नि शीतल हो जावे, परन्तु पतिव्रता नारी कदापि अपने पतिव्रत धर्म से च्युत नहीं हो सकती है। तू कायर है, दुष्ट है। अरे लम्पटी! तुझे लज्जा भी नहीं आती? इतना कहने पर भी उस दुष्ट यक्ष ने छोड़ना नहीं चाहा।

तब गुणश्री कुपित हो बोली, रे दुरात्मन्! ठहर अभी सतीत्व के बल से तुझे भस्म करती हूँ। देखती हूँ तू कहाँ जायेगा? खड़ा रह, पापात्मन्! देख मेरी शाप शक्ति। सतियों के सतीत्व में अपरिमित शक्ति विद्यमान रहती है। उसके सामने सुरेन्द्र, धरणेन्द्र, नागेन्द्र आदि कोई भी टिक नहीं सकता। कांपते हुए यक्ष ने गुणश्री को उसी को समय छोड़ दिया। परन्तु अन्तरंग वासना शान्त नहीं हुई।

गुणश्री विजयी हो अपने घर गयी। शीलमात्र ही नारी का जीवन है, ऐसा विचार कर शान्ति से अपने घर आयी, इधर यक्ष का हृदय शान्ति नहीं पा सका। वह विद्या बल से यक्षरूप छोड़कर, गुण धवल मन्त्री का रूप धारण कर दूसरे ही दिन श्रेष्ठी के द्वार पर आया। उस समय उसने द्वारपालों से कहा कि देखो आज नगर में बहुत से धूर्त जालिया लोग आये हैं, उनमें से यदि कोई मेरा जैसा रूपधारी आवे तो अन्दर नहीं आने देना। इस प्रकार उन्हें सावधान कर अन्दर गया। बड़े स्नेह से मधुर वाणी में गुणश्री को पुकारा। असमय में पति आगमन से गुणश्री विस्मय में पड़ गयी। उसने विचारा कि यह निर्लज्जता का कार्य है जो दिन में मुझे शयनागार में बुला रहे हैं। किसी अशुभ आशंका से उसका हृदय धड़का। ज्यों-त्यों गृहकार्य से निवृत हो शयनागार की ओर जाने की तैयारी हुई कि उसी समय असली गुणधवल मन्त्री द्वार पर आ पहुँचा, किन्तु द्वारपाल ने अन्दर प्रवेश नहीं करने दिया। गुणधवल ने कहा अरे! द्वार रक्षक! आज क्या तुझे पागलपन छाया है या नशा चढ़ा है, अथवा कोई व्यन्तर तुझमें

प्रविष्ट हो गया है, जो मुझे नहीं पहिचानता है। मैं गुणधवल तुम्हारा स्वामी हूँ।

अरे जा-जा धूर्त! सारे नगर को ठगकर यहाँ आया है, मेरे पास तेरी ठग विद्या नहीं चल सकती है। द्वारपाल ने गरजते हुए कहा। गुणश्री हो-हल्ला सुनकर चित्राम-सी खड़ी रह गयी। यह क्या अद्‌भुत दृश्य है। स्वप्न भ्रम अथवा सत्य, इस प्रकार वह नाना विचारों में पड़ गयी।

मन्त्री अपने ही द्वारपाल से तिरस्कृत हुआ। हाय-हाय करने लगा। वह उठा और सीधा राजद्वार में जा पहुँचा। अपने घर का सकल वृतान्त राजा से निवेदन कर उचित न्याय की प्रार्थना की। राजा ने कहा — तुम घबराओ मत। मैं अभी उस धूर्त को बुलाकर कुछ गूढ़ प्रश्नादि कर अपनी न्यायोचित बुद्धि से सम्यक परीक्षा कर सही न्याय कर तेरा दुःख निवारण करूँगा।

राजा बैरीसिंह ने तुरन्त उस पाखण्डी को सैनिक भेजकर बुलाया। परीक्षार्थ उससे अपने गूढ़ कार्यों के विषय में पूछा। तब मायावी ने अपने अवधिज्ञान से राजा के मनोभाव को परख सही उत्तर दे दिया। इसके अतिरिक्त कई बातें राजा के बिना पूछे ही बतला दीं। राजा हैरत में पड़ गया। ये दोनों ही सच्चे प्रतीत हो रहे हैं। किसे सच्चा और किसे झूठा कहूँ। वह हैरान हो गया और उसने दूसरे दिन न्याय करने का आदेश दिया।

नगर में डोडी पिट रही है, जो पुरुष कृत्रिम-अकृत्रिम गुणधवल की परीक्षा कर निर्णय करेगा, उसे राजा बैरीसिंह एक लक्ष दीनार से सम्मानित करेंगे। चारों ओर कोलाहल मचा था।

कौतुक से नर–नारी जनों की भीड़ लगी थी। परन्तु न्याय कौन करे? यह डिंडोरी की आवाज बुद्धिवैभव के धनी महीपालजी के कानों में पड़ी। बस फिर क्या था? कुतुहली कुमार राजदरबार में उपस्थित हुआ। सभा खचाखच भरी थी। राजा सिंहासनारूढ़ था। दोनों समान रूपधारी मन्त्री खड़े थे। रंग, रूप, आकार, वेशभूषा सब दोनों का समान देखकर कुमार समझ गया कि इनमें कोई एक प्रपंची है।

महीपाल ने विनय से राजा को कहा—हे राजन्! इस निर्णय में हमारे गुरुजनों का उपदेश क्रिया विधिपूर्वक, मान्य होना चाहिए। सभी की सम्मति से मैं उसका प्रयोग कर निर्णय कर सकता हूँ। समस्त सभासद एक स्वर में सम्मत हो गये। शीघ्र न्याय करो। इनका कष्ट शीघ्र दूर करो। चहुँओर राजसभा गूँज उठी। राजा की अनुज्ञा पाकर महीपाल एक छोटे मुख की झारी लाया। यथाविधि पूजा की और विज्ञप्ति की कि जो इन दोनों में से इस झारी की टोंटी से घुसकर प्रमुख द्वार से निकल आयेगा, वही सच्चा गुणधवल समझा जायेगा। इस विज्ञप्ति को सुनकर कृत्रिम बनावटी मन्त्री हर्ष से फूला नहीं समाया, शीघ्र ही उछलता हुआ उस लघुद्वार से प्रविष्ट हो दीर्घद्वार से निकल आया। उसी क्षण महीपाल ने उसे कसकर पकड़ लिया और राजा से कहा, लीजिए यह है बनावटी धूर्त और वह है सच्चा यथार्थ गुणधवल। सम्पूर्ण सभा दाँतों तले अंगुली दबा गयी। यक्ष भी विस्मित हो, महीपाल को नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमायाचना करता हुआ अपने स्थान को चला गया। तब राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

सभा को सम्बोधन कर राजा कहने लगा — देखो, इसका बुद्धि कौशल, विद्याकुशलता और प्रत्युत्पन्नमति, जिसके समक्ष मनुष्य क्या, देव को भी झुकना पड़ा। कुमार तुम धन्य हो, लो यह तुम्हारा उपहार। एक लाख दीनार भेंट कर राजा ने उसे हृदय से लगाया तथा गुणधवल मन्त्री से भी यथोचित सम्मान कराया। मन्त्री ने आदर से उसे कण्ठ से लगाकर कहा — हे गुणशिरोमणी! आपके प्रसाद से आज मुझे खोया हुआ घर, द्वार और दारा की प्राप्ति हुई है। आप हमारे परम हितैषी मित्र हो। आपकी असीम कृपा से मुझे मेरी शीलवन्ती भार्या प्राप्त हुई है। आप मेरे अकारण बन्धु हैं। इस प्रकार नाना प्रशंसा कर राजा की आज्ञा प्रमाण कर अपने घर (हवेली) को पधारा, साथ में महीपाल को भी लाया। अति स्नेह दिखलाकर बोला—हे सर्वोत्तम मित्र! आप मेरे हितैषी बन्धु हैं। यह मेरी सम्पत्ति, कुटुम्ब, परिवार सब आपका ही है, मैं भी आप ही का हूँ। आपने अपने गुणरत्नों से मुझे खरीद लिया है। आप मेरे हितकर बन्धु हैं। मैं आपका दास हूँ। अति अनुराग से गुणधवल ने भी उसे एक लक्ष रुपये भेंट किये। सज्जनों की यही रीति है। उपकारी का उपकार अवश्य करते हैं। वनस्पतिकाय श्रीफल प्रथम थोड़ा-सा जल पीकर जीवनपर्यन्त मस्तक पर सुमधुर जल को धारण करता है। महीपाल कुमार भी प्रसन्नचित दोनों स्थानों से प्राप्त धन को मन्त्री के घर रखकर निष्कपट, सरलचित्त से छलोछद्रों से रहित सागर सेठ के यहाँ सुखपूर्वक रहने लगा। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रखर कला कौशल से राज्य का प्रत्येक सदस्य उसके प्रति अति प्रसन्न अनुरागी था।

★ ★ ★

चारों ओर हाहाकार मचा है। बाजार, गलियाँ, सड़कें दौड़ा-दौड़ी से व्याप्त हैं। हटो, चलो, भागो, वह आया, वह मरा, बचा, बचा, यह तो बचा, अरे मेरी लड़की को बचाओ, वह मेरा वृद्ध पिता है, कैसे बचेगा? यही ध्वनि आ रही थी। हाँ, ठीक था। राजा का यह हस्ती सांकल तोड़कर भाग निकला था। उज्ज्वल कान्ति से युक्त महाबलवान गुणवान चन्द्रकान्ति सदृश उज्ज्वल श्वभ्र वर्ण अन्य हाथियों से विलक्षण अचानक मदोन्मत्त हो, सांकल-लौह शृंखलाओं को तोड़कर भाग खड़ा हुआ। अनेक स्त्री-पुरुषों, बाल वृद्ध आदि को मारता, पछाड़ता, कुचलता, चिंघाड़ता, धूम मचाता नगर में उन्मत्त हुआ घूम रहा था। बड़े-बड़े गज कला प्रवीण पहलवान बुलाये गये, परन्तु सभी असफल हुए, कोई भी उस गजराज को बाँध नहीं सका। उस उपद्रवी ने अनेकों उत्तुंग अट्टालिकाओं को तहस-नहस कर दिया। राजा बैरीसिंह कर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसने घोषणा करा दी जो व्यक्ति मेरे इस उच्छृंखल मदोन्मत्त दुष्ट गजराज का दमन करेगा, उसे एक लक्ष दीनार इनाम पारितोषिक में दिया जायेगा। इस घोषणा को सुनकर कुमार घर से निकला। अति बलवान उस निरंकुश गजेन्द्र को देख निर्भयता से उसकी ओर आया। सुललित मधुर गान कर उसे चित्रामवत् खड़ा कर दिया। गान में मस्त हो गज सब मस्ती भूल गया। मन्त्रबद्ध सा निश्चल खड़ा रहा। तत्काल कुमार उछलकर उसके मस्तिष्क पर आरूढ़ हुआ। अपने आधीन कर राजा के हाथी खाने में लाकर बाँध दिया। राजा ने प्रसन्न हो विज्ञप्ति के अनुसार उसे एक लक्ष स्वर्ण दीनार और सुन्दर-सुन्दर

वस्त्रालंकार देकर सम्मानित किया। राजकुमार यह भी मन्त्री के यहाँ रखकर सागर सेठ के यहाँ आ गया।

नगर में चहुंओर महीपाल कुमार के ही गुणों की चर्चा हो रही थी। बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सभी के मुख पर एकमात्र कुमार का ही गुण कीर्तन था। यह है पुण्य का जोर। बुद्धि कौशल से क्या परे है ? सबकी आँखों का तारा कुमार नक्षत्रों में चाँद जैसा दैदीप्यमान होने लगा।

★ ★ ★

राजदरबार लगा है। बैरीसिंह भूपति राजसिंहासन पर आसीन है। महीपाल सहित कुछ जौहरी बहुमूल्य हीरों की जाँच कर रहे हैं। उसी समय राजकुमारी जिनेन्द्र प्रभु की पूजा कर आसिका लेकर पिता के पास आयी। पिताजी ने बड़े प्रेम से उसे गोद में बैठाया। वह साक्षात् लक्ष्मी थीं, कान्ति से चन्द्रकला थी, कोमलाङ्गी यौवन के प्रारम्भिक चिह्नों से युक्त थी, सहसा उसकी दृष्टि सभा में उपस्थित महीपाल पर पड़ी और गयी तो पुनः वापिस नहीं लौटी। मानो महीपाल के विद्यादिक गुणों में प्रवेश कर उलझ गई हो। कला लक्ष्मी सौन्दर्य, विद्या आदि सभी गुण सर्व में नहीं होते हैं। बिरले ही पुण्यवान सच्चरित्रों में ही होना सम्भव है। राजकुमार को सभी गुणों से समन्वित पाकर अपने को धन्य समझ रहे थे। चन्द्रलेखा कुसुम बाण से पीड़ित हो उठी। उसका सर्वांग कामाग्नि से दहक उठा। वह उठी धीरे-धीरे बार-बार पीछे मुड़कर देखती हुई किसी प्रकार राजमहल में गयी। शरीर गया महल में, परन्तु मन महीपाल के पीछे छलाँग मार रहा था। असाद्यकाम पीड़ा से

संतृप्त चन्द्रलेखा ने अपनी सखी से सम्पूर्ण मनोव्यथा कही और बड़े प्रेम से उसे महीपाल कुमार के पास भेजा

चतुर दूती अवसर पाकर एकान्त में राजकुमार से बोली — हे राजकुमार! जिस समय से मेरी स्वामिनी राजकन्या चन्द्रलेखा ने आपके गुण और रूप सम्पदा को देखा है, वह कामबाण से विंद्य हो, दु:खी हो रही है। आप कृपाकर उसे जीवनदान करें। इस समय उसे मलयागिरि चन्दन का लेप, मोतियों का हार, चन्द्र की चन्द्रिका, झरनों का निहार भी नहीं सुहाता है। कामज्वर के ताप में झुलस रही है। उसके प्राण आपके हाथ में हैं। प्रणय दान कर उसकी रक्षा करिये।

महीपाल ने मन में विचारा 'मैं भी यही चाहता था।' प्रकट बोला, हे बयोहारिणी (दासी)! तुम्हारी स्वामिनी के सदृश ही मेरी अवस्था है। जिस क्षण से उस मृगनयनी, कमलवदनी को मैंने देखा है, वह तब से मेरे हृदय कुंज में पराग की भाँति बसी है। किन्तु सत्पुरुषों को प्रत्येक कार्य न्याय, नीति एवं विवेक पूर्ण होता है, अस्तु यदि राजा स्वयं अपनी कन्या को मुझे सहर्ष प्रदान करेंगे तो मैं अवश्य उसे प्रीति से स्वीकार करूँगा, अन्यथा करना कुलवानों की परम्परा नहीं है। न्यायपूर्वक भोग भोगने से उभयकुल शोभित होते हैं। अन्यथा अन्याय से उभयकुल कलंकित हो जाते हैं। दोनों लोक भी अन्यायी के नष्ट हो जाते हैं। इस विषय में न्यायोचित रूप से हमारे कार्य की सिद्धि हो, वही उपाय करना उचित है। तुम अपनी स्वामिनी को धैर्य बँधाकर यह सन्देश सुना देना। कुमार को प्रणाम कर चेरी (दासी) ने

प्रस्थान किया।

राजकन्या दिन पर दिन क्षीण होने लगी। आहार, विहार, निद्रा, क्रीड़ा सब भूल गयी। शरीर की कान्ति क्षीण हो गयी। मुरझाई लता के समान शिथिल हो गयी।

उष्ण निश्वास लेती हुई कन्या को विवर्ण देखकर एक दिन उसकी माँ ने बड़े दुलार से उदासीनता का कारण पूछा। लज्जावनत कन्या से कहा — बेटी! मौन क्यों साधा है? जो भी आधि, व्याधि हो यथार्थ कह। बिना कहे रोग का इलाज नहीं होता। मैं अभी वैद्यादि (चिकित्सकों) को बुलाकर तेरा सही उपचार कराऊँगी। मुख से कहे बिना कार्यसिद्धि होना दुर्लभ है।

माता के अति आग्रह से कुछ क्षण विचारकर चन्द्रलेखा ने अपना मनोभाव माँ के समक्ष प्रकट कर दिया। नीतिकार कहते हैं कि—

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा च पृष्ठतः।
स्वकार्य साधयेत् धीमान् कार्य ध्वंश हि मूर्खतः॥

महारानी ने पुत्री का मन्तव्य जानकर सम्पूर्ण वार्ता राजा से निवेदन की। राजा सुनते ही हर्षोत्फुल्ल हो उठा। मेरी पुत्री ने बहुत सुन्दर उपयुक्त विचार किया है। महीपाल उसके अनुरूप योग्य वर है। मैं अभी महीपाल को बुलाकर इस शुभ कार्य को सम्पन्न कराता हूँ। राजा ने भृत्य द्वारा कुमार को बुलाकर अपना मन्तव्य प्रकट किया।

महीपाल ने नम्रता से उत्तर दिया 'राजन्! मैं परदेशी हूँ। मेरा कुल जाति वंश अज्ञात है। आप अपनी सर्वांग सुन्दरी गुणवती

कन्या मुझे किस प्रकार देना चाहते हैं?'

'हे सुभग! तुम सत्य कहते हो। समान जाति, उत्तम वंश, कुल का ही वर होना चाहिए। आपका चारित्र विद्या गुण कला ही परिचय है। फिर भी यदि कहीं कमी है तो आप हमें अवगत कराइये।' राजा ने कहा।

कुमार ने राजा का पक्का अभिप्राय जानकर अपना यथार्थ परिचय दिया, जिसे सुनकर राजा बैरीसिंह अति प्रसन्न हुआ।

शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न, शुभ नक्षत्र में चन्द्रलेखा का विवाह सुनिश्चित हो गया। शहनाईयाँ बजने लगीं! कहीं नृत्य-गान, कहीं श्रृंगार और कहीं सजावट होने लगी। नारियां मंगलाचार में संलग्न थीं। कोई वर-वधु के पुण्य का कीर्तन करती तो कोई राजा-रानी का। निर्दिष्ट समय पर दोनों का पाणिग्रहण संस्कार हो गया। राजा ने कन्या को रत्नाभरण, स्वर्णाभरण, मणिमाणिक्य भरण, चीनपट्ट, दुकूलादि वस्त्र, महल, हाथी, घोड़े इत्यादि सामग्रियाँ प्रदान कीं।

सात मंजिले महल में महीपाल कुमार चन्द्रलेखा सहित नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में विभोर हो गये। चन्द्रलेखा महीपाल को नवीन-नवीन कामकेलि और कुमार चन्द्रलेखा को नूतन-नूतन रतिकेलि सिखाने लगे। इस प्रकार से देवों के समान सुख भोगते हुए उनका बहुत सा समय सुख से व्यतीत होने लगा।

★ ★ ★

एक दिवस महीपाल कुमार अश्वारोही हो क्रीड़ा पर्वत में

मनोरंजनार्थ गया। उपवन में परम वीतरागी केवली भगवान उदयाचल के सूर्यवर्ण समान स्वर्णमय सिंहासन पर गन्धकुटी में अन्तरिक्ष में विराजमान धर्मोपदेश कर रहे थे। कुमार ने श्रद्धावनत भक्ति से शिरोनत होकर युगल कर जोड़कर मस्तक नवाकर नमस्कार किया। श्री प्रभु ने उसे श्रद्धावान निकट भव्य समझकर द्विविध धर्म का यथायोग्य उपदेश दिया।

भो भव्यात्मन्! जो भव्यजीव प्राणी मात्र को अभयदान प्रदान करता है अर्थात् किसी को सताता नहीं है, पीड़ा देने का भाव नहीं रखता है, संसार में वह निर्भय सिंह के समान विचरण करता है। जो अन्य को पीड़ा देता है, सताता है, वह भव-भव में उनके द्वारा पीड़ित किया जाता है, सताया जाता है। सत्य ही है — जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल प्राप्त होता है। इस लोक में जो जीव जैसा शुभाशुभ कर्म करता है, वैसा ही अच्छा-बुरा फल पाता है। मैं श्रेष्ठी और हाली इन दो का दृष्टान्त देता हूँ। तुम एकाग्रचित्त से सुनो।

हे महीपाल! इस रतनपुर में ही एक श्रावक नाम का हाली रहता था, वह प्रतिदिन खेत पर जाता था। एक दिन उसने भयंकर काले नाग को खेत में आते देखा। दुष्ट हाली ने उसे फरसे से मार-मारकर अर्धमृतक कर मार्ग में फेंक दिया। उसी समय जिनदेव नाम का श्रावक उस मार्ग में आया। उसका जहाज सागर में डूब गया था। वह किसी प्रकार प्राण बचाकर सात दिन में समुद्र पार कर आया था। थकान से चूर भूखा-प्यासा था। उसने वहाँ पर सिसकते, कण्ठगत प्राण हुए उस सर्प को देखा। दयाद्र

हो उसने उसे महामन्त्र णमोकार सुनाया। मन्त्र सुनकर उस मरते हुए सर्प ने शान्ति से प्राण त्याग कर महर्द्धिक व्यन्तर पर्याय प्राप्त की। अन्तर्मुहूर्त में यौवन पा अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव का वृतान्त ज्ञात किया। अपकारी और उपकारी का स्मरण कर उसने विचारा कि जो प्राणी अपने मित्र के उपकार को भूल जाते हैं, वे जीवित ही मृतक समान हैं। तत्काल वह व्यन्तर मर्त्यलोक में आया। उच्चस्वर से जिनदेव सेठ से बोला, अहो भद्र! आपके पंच नमस्कार मन्त्र के प्रसाद से मैं नीच तिर्यंचगति से निकलकर श्रेष्ठ देव हुआ हूँ। इस समय मैं प्रत्युपकार करने में समर्थ हूँ, आपको जो चाहिए, वही कहिये। व्यन्तर के अनुरोध पर भी निस्पृही सन्तोषी जिनदेव ने कुछ नहीं माँगा। तब वह व्यन्तर प्रसन्न हो आदर से उसे पाँच रत्न प्रदान कर चला गया। सेठ ने एक रत्न बेचा और भोजन सामग्री व रसोई के बर्तन खरीदे। पुनः भोजन पानकर जहाज पर आरूढ़ हो अपने घर पहुँचा, हे राजन्! यह अभयदान का महाफल है।

अब, जीवहिंसा का परिणाम (फल) सुनो, वह व्यन्तर देव वहाँ से हाली के घर जा धमका। उस समय हाली खेत की घटना अपने परिवार को सुना रहा था। बस क्या था, शत्रु को देखते ही आग-बबूला हो गया। और उसके शरीर में दुस्सह भयंकर वेदना उत्पन्न कर दी। भयंकर वेदना से तड़पता हुआ घोर नरक की यातनाओं का अनुभव करने लगा। चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना, पीना, सोना, जागना सब कुछ भूल गया। हाय-हाय चिल्लाने लगा। आज भी उसी प्रकार पीड़ित चिल्ला रहा है,

आज पन्द्रह दिन हो गये, किन्तु क्षणभर भी साता नहीं मिली।

कुमार केवली भगवान की वाणी के अनुसार वहाँ पहुँचा। यथोक्त दशा देखकर विस्मय करने लगा। वह पुनः केवली प्रभु की गन्धकुटी में आया और हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछा—हे भगवन्! मेरी प्राणप्रिया सोमश्री समुद्र में जहाज फट जाने से वियुक्त हो गयी, वह पुनः मुझे मिलेगी या नहीं! प्रभु ने बतलाया वह अभी जीवित है। रत्नसंचयपुर में श्री आदीश्वर भगवान के मन्दिर के पास तुझे मिलेगी। केवली भगवान के वचनों में अटल विश्वास कर कुमार अपने महल में आया। वह विचारने लगा। 'केवली की वाणी अटल है, इसमें फर्क नहीं आ सकता। समुद्र चाहे मर्यादा उल्लंघन कर दे, मेरु चलायमान हो जाये, सूर्य पश्चिम में उदय हो, किन्तु केवली के वचन अन्यथा नहीं हो सकते। अब मुझे रत्नसंचयपुर जाने का प्रयत्न करना चाहिए।

हे राजन्! मैं रत्नसंचयपुर जाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा वहीं कुछ व्यापार करने की है। आप आज्ञा प्रदान कर मेरा मनोरथ सफल करें। कुमार ने अति विनय से अपने ससुर से आज्ञा माँगी।

राजा ने कहा — हे भद्र! मैं तुम्हारा उत्साह गिराना नहीं चाहता। परन्तु यहाँ पर आपको किसी वस्तु का अभाव तो है नहीं। आप जो चाहें वह मैं उपस्थित करूँ। फिर यदि आपको जाना ही है तो शीघ्र अपना कार्य सम्पादन कर लौट आइये। मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध आपको नहीं रखना चाहता हूँ। ससुर के वचन प्रमाणकर कुमार ने एक नवीन सुदृढ़ सुन्दर जहाज तैयार करवाया। आवश्यक वस्तुएँ अनेकों भांड, कई सेवकों से जहाज

भरवा दिया। ठीक ही है कर्मठ पुरुषार्थी सज्जन पुरुषों के कार्य में विलम्ब नहीं होता। इधर राजा बैरीसिंह ने अपनी सुपुत्री चन्द्रलेखा को अनेकों बहुमूल्य वस्त्राभूषण दास-दासी देकर महीपाल के साथ विदा कर दिया। कुमार के साथ अपना अथर्णव नामक मन्त्री उन सबकी देखभाल के लिए भेजा। कुमार महीपाल ने जन-धन से परिपूर्ण जहाज लेकर शुभ दिन में प्रयाण किया। राजा पुत्री के स्नेह से बेटी जमाई को पहुँचाने जहाज पर गया। दल-बल के साथ प्रयाण हुआ। बेटी-जमाई के स्नेह से राजा का कण्ठ गद्गद् और नेत्र अश्रु से विगलित हो गये। पंच नमस्कार मन्त्र जाप के साथ कुमार ने प्रस्थान किया। अनुकूल पवन पाकर जहाज तीव्रगति से चलने लगा। राजा एकटक देखता रहा जब तक कि वह दृष्टिगत होता रहा। महीपाल ने सर्वकार्य मन्त्री के अधीन कर दिये। स्वयं अपनी प्रिया के साथ नाना विनोद करने लगा। कभी सागर की उत्ताल तरंगों को दिखाता, कभी चन्द्रबिम्ब का निरीक्षण कराता, कहीं चकवा-चकवी का दृश्य देखते कहीं टापुओं की रोशनी देखते। कभी तीव्र पवन के झोकों से डगमगाते जहाज के भय से अपनी प्रिया को हृदय से लगाता, आश्वस्त करता। आमोद-प्रमोद के साथ मार्ग तय होने लगा।

★ ★ ★

संसार में तृष्णा, प्राणी को कृपाण के समान घातक है। लोभ में भी धन और वनिता का लालच विशेष अनर्थकारी है, मनुष्य की विवेक सम्पदा ही घातक है। अथर्णव मन्त्री विपुल धन-सम्पदा से भरा जहाज और अतिशय रूपसम्पदा की खान चन्द्रलेखा

को देखकर मतिहीन हो गया। उसका धैर्य विवेकपूर्वक छूट गया। वह कुमार का प्राण नाश कर धन और उसकी प्रिया के लेने का उपाय सोचने लगा। वह विचारने लगा, इस समय सर्व-व्यवस्था मेरे हाथ में है। नौकर-चाकर सब मेरे अनुकूल हैं। मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। कुमार और राजकुमारी मेरे प्रति विश्वस्त हैं। अतः सरलता से मैं इन्हें धोखा देकर मनोरथ सिद्ध कर सकता हूँ। नीतिकारों ने ठीक ही कहा है—धन सर्व अनर्थों की जड़ है—

अर्थो मूलमनर्थानां अर्थो दुर्गति कारणम्।
कषायश्चोत्पादको अर्थः दुखानां च विधायकम्॥

यह अर्थ अर्थात् धन इस लोक में तो अनर्थ का कारण है ही, परलोक में भी दुर्गति का हेतु है, कषायों को उत्पन्न करनेवाला और दुःखों का विधाता है। अथर्णव मन्त्री को धन और काम का नशा चढ़ गया। मौका पाकर एक दिन अर्धरात्रि में कुमार महीपाल को गहरी निद्रा में सोया देख मन्त्री ने उसे समुद्र की उछलती लहरों को अर्पण कर दिया। स्वयं आकर हर्षभरा सो गया।

प्रातः हुआ। पौ फटी। लाल गोला पूर्व में आना चाहता है। उसी समय चन्द्रलेखा की निद्रा भंग हुई। सेज खाली थी। वह इधर-उधर देखने लगी। हें! यह क्या हुआ? क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ? मेरा प्रियतम कहाँ है? अरे, यह तो सत्य है, स्वप्न नहीं। वह व्याकुल हो चिल्लाने लगी। हाय-हाय पतिदेव! आप मुझ अबला को छोड़कर कहाँ गये? क्या हास्य में कहीं छिपे हैं? यदि ऐसा है तो शीघ्र आइये। मैं आपका वियोग अधिक

नहीं सह सकती। तुम्हारे दर्शन बिना मैं प्राण रखने में असमर्थ हूँ। आपने कभी ऐसा उपहास नहीं किया, आज क्यों किया? इत्यादि कहती हुई जोर से विलाप करने लगी। उसके उच्च स्वर को सुनकर जहाज के समस्त लोग आकर एकत्रित हो गये। सब ओर कुमार को देखा किन्तु हताश ही हुए। दुष्ट वंचक अथर्णव भी बनावटी हाय-हाय कर रुदन करने लगा। हे भृत्यो! चारों ओर कुमार की तलाश करो। हाय! दैव ने यह क्या किया। तब सर्व सेवकों ने कहा हमने सर्वत्र खोज की किन्तु उनका कहीं पता नहीं लगा। तब वह दुराचारी मन्त्री राजकुमारी से बोला, तू विषाद मत कर, अन्धियारी रैन में वह नहीं मिलेगा। समुद्र तट भी समीप ही है। जहाज को किनारे लगाकर पूर्ण प्रकाश में अगाध समुद्र के गर्भ में तेरे पति का अन्वेषण करूँगा। मन्त्री के वचन सुनकर कुमारी अपने पति को समुद्र में मग्न जान स्वयं भी गिरने को तैयार हुई। मोह का यही स्वभाव है। मन्त्री ने उसे रोका। हे सुन्दरी! होनहार (भावी) किसी से टाली नहीं जाती। जो होना था, वह हो गया। तू अब धैर्य धारण कर।

विवश हो राजकुमारी रुदन करने लगी। हाय-हाय कर पत्थर को भी द्रवित करनेवालाा शोक किया। हे नाथ! तुम कहाँ हो? मेरे जीवनाधार एक बार आओ, मुझे सान्त्वना दो। तुम अन्धकार में क्यों उठे? कहाँ गये? कैसे पड़े? किसी ने नहीं देखा यह क्या हुआ? अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरा कौन सहाय है? इस प्रकार विरह व्याकुल रमणी को देख पाखण्डी मन्त्री कहने लगा, हे प्रिय! मैं तेरा आज्ञाकारी सेवक हूँ। मेरे रहते तुम्हें किसी

प्रकार का कष्ट नहीं होगा। जो पति सम्बन्धी कार्य है, वह मैं सम्पादन करूँगा। तू समझदार है। गई वस्तु का शोक नहीं करना चाहिए। 'गते शोकं न कुर्यात्' तेरा यह मनोज्ञ रूप लावण्य तेरा यौवन रति समान चितवन देख मैं भी अधीर हो रहा हूँ, तू खेद तज। मैं सर्व कामना पूरी करूँगा। प्रसन्न हो। मेरे साथ अनुपम भोगों को भोग। तेरी यह कान्ति, भोग, श्री कुछ ही दिन की है, इसे व्यर्थ मत खो। इस प्रकार उस नीच कामी के वचन सुन चन्द्रलेखा स्तब्ध हो गयी। मन में विचारा कि इसी कुकर्मी ने मेरे पति को सागर में डाला है, यह दुष्ट है। मेरा शील अवश्य भंग करेगा। अभी इसके साथ सब सेवक हैं। सर्वधन भी इसके हाथ में है। इस समय मैं एकाकी हूँ। शरीर शक्ति से भी पार नहीं पा सकती। अब शील रक्षण कैसे करूँ। हाँ, ठीक रहेगा, कोई आशा नहीं, बस छल से ही इसे वश में करना चाहिए। यदि सर्वथा निषेध किया तो यह बलात् मेरा शील रत्न हरण कर लेगा। ऐसा सोचकर कि नीतिकार कहते हैं—

'समान में शूर-वीरता दिखालावे, महन्त पुरुषों में प्रशमभाव, नीचों की अवज्ञा, नम्रीभूत व विनयशीलों का सत्कार करना, सरल में सरलता, मूर्खों में कपटवृत्ति द्वारा अपना कार्य सिद्ध करे। यह मूर्ख है, सो इसे आशा प्रपंच में फँसाने से ही मेरा शील रक्षित हो सकता है। कुछ दिन तक आशा-दिलाशा देकर इसे रखना चाहिए। हाँ, याद आया प्रस्थान के समय पतिदेव ने कहा था कि मेरी प्रथम प्राणप्रिया गुणश्री पत्नी का मिलाप रत्नसंचयपुर के जिनमन्दिर में होगा। केवली का वचन है। यह अवश्य सत्य

होगा। इसलिए इस धूर्त से कुछ धन ले रत्नसंचयपुर चलना चाहिए।

मन ही मन ऐसा विचारकर प्रकट में बोली, हे मन्त्री! तू मुझे अतिप्रिय है मेरी भी यही अभिलाषा थी। परन्तु मैं इस समय यह तेरा मनोरथ सिद्ध नहीं कर करती। वह विदेशी भरतार धन का क्षय करनेवाला मुझे अनिष्ट ही था, इसलिए मैंने प्रतिज्ञा की थी, 'यदि मुझे दूसरा पति मिलेगा तो एक माह का उपवास कर मन्दिर में पूजा करूँगी, सो हे पुरुषोत्तम! मेरी अभिलाषा पूर्ण हुई। अब सर्वप्रथम, मैं एक माह तक मन्दिर में मनोव्रत ले पूजा कर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगी।

यह सुन मन्त्री हर्षोत्फुल्ल हो, सोचने लगा। मेरा कार्य सिद्ध हुआ। 'उतावला सो बावरा' अब कुछ दिन सन्तोष धारण करूँ। प्रकट में बोला, हे प्रिय! तुम्हारा वचन मुझे प्रमाण है। जैसा तू चाहे, वैसा कर और कोई इच्छा हो तो प्रकट कर, मैं सर्व इच्छाओं को पूरी करने में समर्थ हूँ।

कुछ दिन बीत गये। तत्पश्चात् जहाज रत्नसंचयपुर पहुँचा। चन्द्रलेखा आदिश्वर प्रभु का ध्यान किया और णमोकार मन्त्र का निरन्तर जाप करती रही। जहाज उतरा। मन्त्री बहुत से वस्त्राभूषण एवं रत्न थालों में भरकर वहाँ के राजा के भेंट करने हेतु लेकर गया। नमस्कार कर भेंट प्रदान की। राजा भेंट ले सन्तुष्ट हुआ। उसे रहने को महल दिया। अथर्णव महल में रहने लगा। राजा ने प्रसन्न हो उसे मन्त्री के प्रधान पद पर आसीन किया। दान की महिमा अपार है।

दानेन तिष्ठन्ति यशांसि लोके

दान के प्रभाव से राजा सन्तुष्ट हुआ तो क्या ? देव भी वश हो जाते हैं। अस्तु।

★ ★ ★

जहाज फटने पर सोमश्री की स्थिति

जहाज फट गया था। जिससे सोमश्री समुद्र में पड़ी। भाग्य से एक फलक का सहारा लेकर पाँच दिन में तट पर आयी। भूख-प्यास की बाधा की परवाह न कर पति की वह खोज करने लगी। सम्भव है मेरी ही भाँति मेरे पतिदेव भी यहाँ आये हों, चारों ओर खोजा, किन्तु कहीं पता नहीं लगा। हताश हो विलाप करने लगी। दिशाऐं करुण ध्वनि से व्याप्त हो गईं। उसका विलाप ठीक वैसा ही दुःख भरा था, जैसा सीता ने राम वियोग में किया। मनुष्यों की क्या बात तट के पशु-पक्षी भी हो खड़े रह गये। चंचल कपि समूह भी शाखाओं पर चित्राम से बैठ गये। सोमश्री उच्चस्वर से विलाप करती हुई मूर्च्छित हो गिर पड़ी। क्षणमात्र में शीतल पवन और झरनों के शीतल कणों ने उसे सचेत किया। उठकर उसने एक वृक्ष की शाखा में फाँसी बनाकर बाँधी और मरने का उद्यम करने लगी। दैवयोग से उसी समय वन में कोई तापसी फल-पुष्प लेने आया। उसे गले में फाँसी सहित प्राण-त्यागती देख दयार्द्र हो पेड़ पर चढ़कर फाँसी को काट दिया। सोमश्री नीचे पड़ी। शीतलोपचार से उसमें चेतना आयी। तापसी

बोला — हे बहिन! आत्मघात महनिन्द्य है। तू क्या शास्त्र नहीं जानती? ऐसा खोटा विचार क्यों किया?

विलाप करती हुई सोमश्री ने अपना सम्पूर्ण वृतान्त तापसी को सुनाया। तापसी ने उससे कहा—बहिन! तू भय मत कर। रत्नसंचयपुर में आदि प्रभु का प्रसिद्ध मन्दिर है। उसमें एक महीने को मौनव्रत उपवास कर। जो भी वियोगी स्त्री-पुरुष जिन प्रभु की विधिपूर्वक आराधना करता है, उसे जिनदेव के चरणसेवक देव उसके पति व स्त्री से मिला देते हैं। कदाचित् उसकी मृत्यु हो गई हो तो भी अवगत करा देते हैं। तुम वहाँ जाओ। यथाविधि मासोपवास की दृढ़ प्रतिज्ञा धार, जिनदेव की आराधना करो। हे पुण्यमूर्ति! जिनेदव तो यद्यपि वीतरागी हैं। वे तो न सेवकों से प्रसन्न होते हैं और न निन्दकों से क्रुद्ध। तथापि उनके आराधक देवगण सहज साधर्मी वात्सल्य एवं जिनधर्म की प्रभावनार्थ ऐसा उपक्रम कर दिया करते हैं, यदि तुम्हारा पुण्योदय हो तो। पति के जीवन मरण के निश्चय होने पर तू इच्छानुसार कुछ भी करना। विचारपूर्वक कार्य करने उभयलोक सुख प्राप्त होता है। यश भी मिलता है।

तापसी की आज्ञा प्रमाण सोमश्री विश्राम करती धीरे-धीरे मार्ग तय करती हुई छह महीने में रत्नसंचयपुर पहुँची शीघ्र ही आदि प्रभु के मन्दिर में जा प्रणाम कर विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगी। हे प्रभो! मेरे पति से शीघ्र समागम होवे, अन्यथा इस भव में मेरे अन्न-जल का त्याग है। इस प्रकार कह मौन धारण कर प्रभु के सम्मुख विनय से खड़ी हो गयी।

★ ★ ★

चन्द्रलेखा महल में बैठी थी। मन्त्री आया तब कुमारी बोली, देखो, यह रत्नसंचयपुर है, यहीं आदि जिनेश का सुप्रसिद्ध मन्दिर है। पूर्व प्रतिज्ञानुसार मुझे यहाँ एक माह तक मौनव्रत लेकर आराधना करनी चाहिए। ऐसा न करने से हमारे कार्य में बाधा आ सकती है।

चन्द्रलेखा के संगम का आतुर मन्त्री ने कहा, ठीक है। शीघ्र जाओ। निर्मल बुद्धि से प्रपंच करने पर भी उत्तरोत्तर बुद्धि विवेक युक्त ही होती जाती है। चन्द्रलेखा शीघ्र ही प्रभु के सम्मुख जा प्रणाम कर नम्रता से बोली, 'हे जिनेश! शीघ्र मेरे पति को मिलाओ, अन्यथा मेरे आजन्म आहार जल का त्याग है।' इस प्रकार दृढ़ संकल्प कर यथायोग्य प्रभु की आराधना में मौन ले स्थिर खड़ी हो गयी।

★ ★ ★

इधर राजा महीपाल, दुष्ट मन्त्री द्वारा समुद्र पतित, अगाध जल से कुश्ती करने लगा। उसने पंच नमस्कार मन्त्र का अखण्ड ध्यान किया। बाहुबल से समुद्र को चीरने लगा। कुछ समय बाद उसने एक विशालकाय मच्छ को देखा और सावधानी से उछलकर उस पर चढ़ गया। मच्छ प्रथम तो अथाह सागर की उत्तांग तरंगों से खिन्न था। दूसरे कुमार जोर से उछलकर उस पर आसीन हुआ तो वह भयातुर हो तीव्र वेग से उत्तांग तरंगों को चीरता हुआ अति शीघ्र तीर के समीप आ गया।

रात्रि समाप्त प्रायः थी, पौ फटी, हलका सुनहला प्रकाश

प्राची ने बिछाया, उसके झुरमुट में कुमार ने उच्च जल राशि को देखा। अति निकट तट को देखा कुछ आशंका हुई। उपाय का भय हुआ। उसी क्षण मच्छ से उछलकर जल में कूद पड़ा और अवशेष जल को भुजाओं से पार कर किनारे पर आ पहुँचा। अपना नवीन जन्म समझा। भास्कर देव उदयाचल पर आ पहुँचे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों अन्धकार को नष्ट कर महीपाल के हृदय कमल को विकसित करना चाहता है। कुछ समय विश्राम कर, कुमार उठा। धीरे-धीरे गमन करने लगा। मन में द्वंद मचने लगा। 'अहो दैव! तू सर्वथा मेरे प्रतिकूल है।' मैं चाहता कुछ हूँ और मिलता उसके विपरीत दूसरा ही है। मैं तो प्रथम बिछुड़ी हुई प्राणप्रिया से मिलने जा रहा था कि द्वितीय बल्लभ से भी वियोग हो गया। सत्य है भवितव्य टाली नहीं जा सकती। क्या मेरा दुर्भाग्य मुनिराज केवली भगवान की वाणी को भी विफल कर देगा। नहीं! नहीं! **मुनियों के वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकते।** इस अगाध समुद्र में कौन जीवित रह सकता है? किन्तु मैं जीवन्त आ पहुँचा। यह विशेष बात ही है। इस प्रकार तर्क-वितर्क करता जा रहा था कि एक सुन्दर पानी से भरा सुशील ठण्डे जल से परिपूर्ण सरोवर को देखा। सर्वप्रथम मिष्ट जलपान कर तृषा जन्य खेद शान्त किया। स्नानादि क्रिया से निवृत्त हुआ। समुद्र के क्षार (खारे) जल से दग्ध शरीर को शान्त किया। गीला वस्त्र धारण कर तट पर विश्राम किया। अशान्त मन को सन्तुष्ट करने के लिए सुललित स्वर में गान प्रारम्भ किया। उधर मधुर ध्वनि सुनकर वन में मृग (हिरण) सरोवर के चारों ओर आकर

चित्रित से खड़े हो गये। **जिस प्रकार निर्विकल्प ध्यानी मुनि अपने आत्मानन्दरस से निमग्न होते हैं, उसी प्रकार ये स्थिर थे।** पंचम स्वर से किया गान सुखीजनों को विशेष आनन्दवर्द्धक और दुखियों को संताप को हर मनोविनोद का कारण है। कामनियों को आकर्षण करने का यह सरस मन्त्र है। कुमार गान में लीन था। उसी समय एक तापसी कन्या उस सरोवर में जल लेने आई। उसकी रूप छटा अद्वितीय थी। कर में कलश लिये विशेष सुषमा बिखेर रही थी। उसके प्रत्येक अंग-प्रत्यंग मानों सांचे में ढाले गये हों।

कुमार उसकी रूप गुण कला से चकित हो विचारने लगा कि क्या यह कोई राजकन्या, रोहिणी या रति है अथवा अप्सरा है कि विद्याधरी या नागकुमारी है अथवा वल्कल धारण किये हुए कोई तापस कन्या है? विचार कौन हो सकती है? करते हुए उसने विवेक से काम लिया। अरे! मैं क्या सोच गया? मुझे परनारी के विषय में विकल्प करने से क्या प्रयोजन? अपना काम सिद्ध करना चाहिए। चलूँ इससे यहाँ की नगरी व नरेश के विषय में पता लगाऊँ। किन्तु एकाकी (अकेली) इसके पास मेरा जाना उचित नहीं। पुरुष या स्त्री शील धर्म का रक्षक परम आवश्यक है। इसलिए दूर से ही पहले इसकी चेष्टा देखूँ, यह क्या करती है। सोच कर बैठा रहा।

तापस कन्या उसकी मधुर ध्वनि से पहले ही विचलित हो चुकी थी। वह वहाँ खड़ी रह कर कुमार महीपाल की मधुर सौन्दर्य रश्मि को निर्निमेष दृष्टि से निहारती रही। यह क्या कामदेव

है? चन्द्र है? सनत्कुमार चक्रवर्ती है? मुरारी (कृष्ण) है? विद्याधर है? अथवा स्वर्ग का देव है? यह नररूप में क्या नागकुमार है? ओह! मेरा मन तो अधीर हो रहा है। इसके लावण्य रूपी जल को पार करने की मुझमें शक्ति नहीं। मेरे नेत्र चकोर तो इसमें गड़ गये हैं। इस प्रकार कामबाण से घायल एक ही जगह पुतली-सी खड़ी रही। बार-बार पानी भरने का उपक्रम करती, परन्तु जल भरने में सफल नहीं हुई। महीपाल-कन्या के गुण, विद्या, विशारद उसकी चेष्टा से उसके चित्त के अभिप्राय को समझ गया, क्या वास्तव में यह तापस कन्या मुझमें आसक्त हुई। अरे, वाह रे काम तू बड़ा ढीठ है। देखो, तपोवन में रहनेवाली रूखा-सूखा भोजन करनेवाली है। वह भी एक ही बार मिलता है, भूमि शयन करती है। अपना शरीरमात्र ही परिवार है। वस्त्र भी जीर्ण-शीर्ण है। इस अवस्था में भी काम की व्यथा से विषय वांछा से युक्त है। यह काम विकार भयंकर पिशाच है। पाप कर्मों का फल है। उद्धत यौवन बड़े-बड़े यत्नाचारियों को भी विचलित कर देता है। यह बड़ा ठगिया है। तीनों लोकों के सभी प्राणी इसके वशीभूत हुए हैं।

महीपाल इस प्रकार विचार निमग्न था कि वह चंचला नेत्रा लीलापूर्वक कुमार के समीप आई। कोकिल समान मधुर स्वर में बोली—'हे मनोज्ञ, आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? किधर जाना है? आपका नाम क्या है? गाँव कौन है? किस उद्देश्य से यहाँ पधारे हैं? आप कृपाकर बता सकते हैं? '

तापस कन्या के प्रश्नों को उत्तर देते हुए कुमार बोला, मेरा

नाम महीपाल है। क्षत्रिय वंशोत्पन्न हूँ। समुद्र के मध्य से यहाँ आया हूँ। 'हे सुन्दरी! यह कौनसा द्वीप है? नगर कौन है? इस नगर का रक्षक कौन है?' तब तापस कन्या ने कहा, हे भद्र! मेरे साथ विवाह करो तो आपको बहुत-सी सम्पदा यहीं दिलवाऊँ। प्रचुर सम्पदा से तुम इन्द्र से भी बढ़कर हो जाओगे। प्रत्युत्तर में कुमार बोला, हे बाले! तू तो दीक्षित प्रतीत होती है। तेरे पास धन कहाँ से आया? कुमार के वचन सुनते ही तापस कन्या बोली, हे सुभग! मैं दीक्षित नहीं हूँ। न मैं तापस कन्या ही हूँ। मात्र तपस्विनी का वेष धारण कर रहती हूँ। मेरे जीवन का परिचय चाहते हो तो सुनो।

★ ★ ★

सिंहलद्वीप में रमणीक श्रीपुर नगर है। वहाँ का जितशत्रु राजा था। न्यायमार्ग में आरूढ़ प्रजावत्सल, प्रचण्ड पराक्रमी धर्मात्मा और कला गुण प्रेमी था। उसकी शील-गुण-रूप सम्पन्न पुष्पचूला नाम की रानी थी। परम विवेकी प्रतापवान श्रीधर नाम का पुत्र था। चिरकाल तक राजा सपरिवार धर्म, अर्थ, काम की साधना करता हुआ सुख से समय व्यतीत कर रहा था। एक दिन कुछ कारण वशात् राजा को वैराग्य हो गया। संसार शरीर भोगों की निस्सारता, क्षणभंगुरता का विचार कर उसका चित्त व्यग्र हो उठा। उसने अपने प्रिय पुत्र से कहा—बेटा! पूर्व पुण्य से मैंने यह राज्य वैभव सुख सम्पदा पाई और भोगी है। अब तुम राज्य सम्भालो, मैं परलोक की सिद्धि के लिए तपोवन में जाऊँगा। परलोक यात्रा का पाथेय तैयार करना परमावश्यक है। 'मोक्ष

पुरुषार्थ साधने का उपाय करूँगा, तुम राज्य विभूति धारण कर इस राज्य का समीचीन संचालन करो'—इस प्रकार कहकर उसके सिर पर राज किरीट पहना तिलक कर राज सिंहासन पर आसीन किया। स्वयं पत्नीसहित धनंजय नामक गुरु के सानिध्य में साधु हो गया। तापसियों के व्रत धारण कर उन्हीं के पास कुटिया में रहने लगा।

कुछ काल बीतने पर पुष्पचूला (जो तापसिनी है) के गर्भ के चिह्न स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगे। यह दशा देख, राजा जितशत्रु ने रानी से पूछा। हे भद्रे! तूने यह लज्जास्पद, कुकर्म कब और कहाँ किसके साथ किया? विनयावनत् करबद्ध तापसिनी भेषधारी रानी ने कहा—हे स्वामी! आप अफसोस न करें। मैंने किसी के भी साथ कोई प्रकार का कुकर्म नहीं किया है। मुझे दीक्षा के पूर्व ही गर्भ था। गर्भवती जानकर गुरु दीक्षा नहीं देंगे, इससे मेरा व्रत धारण समय कुछ अवधि के लिये रुक जाता। इसलिए नहीं बताया। सर्व वृतान्त राजा ने तापस गुरु को विदित कराया। राजर्षि तापस की बात सुनकर धनंजय तापस ने अन्य तापसिनियों से राजर्षिणी के गर्भ संरक्षण के लिए आदेश दिया। सबको ज्ञात कराया कि पूर्व का ही गर्भ है। अब इसका यत्न से पालन एवं रक्षण करो। प्रसूति होने के बाद, व्रतों में दृढ़ हो जायेगी।

नवमें मास मेरा जन्म हुआ। वन में तापस कुटी में ही प्रसूति कराई। सभी तापसिनियों ने मेरी और मेरी माँ राजर्षिणी की हर प्रकार से व्यवस्था की। प्रसूति के दसवें दिन धनंजय तापस ने मेरा 'शशिप्रभा' नामकरण किया। क्रमशः द्वितीया के मयंक सम

मैं वृद्धि को प्राप्त हुई। नाना प्रकार की वनश्री के मध्य तपस्विनियों के हाथों में मेरा जीवन पनप कर आज यौवन अवस्था में आपके समक्ष है। हे कुमार! मैं राजकन्या हूँ। मेरा कुल, वंश परम्परा शुद्ध है। आप निश्चित समझिये। मेरा पिता और गुरु धनंजय दोनों ही मेरे विवाह के विषय में अति चिंतित हैं। एक रहस्य की बात है कि मेरे पिता के पास तीन दिव्य विद्याएँ हैं। देवोपुनीत 1. खाट, 2. दिव्य यष्टी (लकड़ी) और 3. कामरूपणी विद्या (मनोवांछित रूप बनानेवाली)।

1. खाट पर सवार होकर मनुष्य आकाश मार्ग से क्षण भर में इष्ट स्थान पर पहुँच जाता है। 2. यष्टी विद्या को हाथ में लेकर अकेला भी लाखों सुभटों को जीतने में समर्थ होता है। और 3. कामरूपिणी विद्या के प्रभाव से क्षणमात्र में मनोवांछित रूप प्रकट हो जाता है। जो विशेष जाप्य, होम, अनुष्ठान, कष्ट सहने पर भी सिद्ध नहीं होतीं, वे भी केवल पाठ मात्र से शीघ्र सिद्ध हो जाती हैं। ये तीनों विद्या मेरे पिता के समीप हैं, वे सुख भोगते हैं। पिता की आज्ञा से मैं जल भरने यहाँ आयी हूँ। भाग्य से आप जैसे पुरुष पुण्य का दर्शन हुआ। मेरा मन अब अन्यत्र नहीं जाना चाहता है। इस प्रकार नीचे नयन कर मौन से खड़ी रही।

महीपाल अत्यन्त हर्षित हुआ। परन्तु विवेकीजन उत्सुक नहीं होते। धैर्य से उसने नीतिपूर्वक उत्तर दिया। हे मनोज्ञ! तुम्हारा पिता यहाँ आकर तुम्हें सम्मान पूर्वक यदि मुझे देगा तो मैं अवश्य स्वीकार करूँगा। शशिप्रभा कुछ सोच, जल भरा घड़ा लेकर खिन्न भाव से अपनी कुटिया में चली गयी।

सखियों के मुख से माता-पिता ने शशिप्रभा की उदासी का कारण ज्ञात कर कहा। बेटी! यदि तेरी इच्छा है तो हमें कोई विरोध नहीं, हम तो तुम्हारा विवाह करना ही चाहते हैं। आज हमें चिन्तामुक्त कर तुमने हमारा बड़ा उपकार किया। योग्य वर को कन्या देना माता-पिता का कर्तव्य है। हे बाले! वह कौन मनोज्ञ वर है? जिसने तेरा मन हरण किया है, कहाँ है? चलो शीघ्र जाकर मैं उसके दर्शन कर तेरी मनोकामना पूर्ण करता हूँ।

प्रमोद भरा तापसी सरोवर पर पहुँचा। कामदेव स्वरूप कुमार को देख मन में यह विचार किया कि पुत्री ने अनुरूप योग्य वर ही पाया। कुल, जाति, परम्परा ज्ञात कर आनन्द से घर ले गया। शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न में दोनों का विवाह कर दिया। समस्त विवाह सम्बन्धी क्रिया पूर्ण होने पर मोचन हथलेवा के अवसर पर राजर्षि ने कुमार से कहा — हे कुंवर जी! आपकी इच्छानुसार आप अपने योग्य वस्तु मांगिये, मैं वही दूँगा।

श्वसुर की प्रार्थना सुनकर महीपाल ने पूर्व अवगत प्रभाववाली दिव्य खाट, यष्टी और कामरूपिणी विद्या देने की प्रार्थना की। यह सुनते ही राजर्षि चौंक पड़ा। हैं, इसे इन दिव्य वस्तुओं का भेद कैसे लगा? जो हो, अब तो वचनवद्ध हूँ। माँगा वही देना होगा। प्रथम तो यह अब मेरे पुत्रवत् जमाई हुआ और दूसरे प्रत्यक्ष वचन प्रदान किया है कि जो इच्छित हो माँगो; अतः वचन लोप से अपयश होगा, अपकीर्ति फैलेगी। इसलिए इनको दे देना ही उत्तम है। इस प्रकार विचार कर तीनों दिव्य वस्तुएँ प्रदान कर दीं। कुमार ने बड़े यत्न से उन्हें अपने अधीन कर लिया। नव-

दम्पति प्रेम विभोर हो एक-दूसरे का मनोरंजन करते हुए विषय सुख में तल्लीन हो गये। स्नेहासक्त उनके दस दिन, बात की बात में निकल गये। अनन्तर श्वसुर से आग्रह कर जाने की आज्ञा माँगी। बड़े कष्ट से राजर्षि ने अनुमति प्रदान की। तब महीपाल खाट पर प्रिया सहित सवार हो आकाशमार्ग से चल पड़ा। प्रयाण बेला में शुभ शकुन हुए। अनेकों पर्वत, नगर, नदी, ग्रामों को उल्लंघन कर अपने चित्त में अनेक कौतुहल करता हुआ वायु सदृश तीव्रगति से रत्नसंचयपुरी नगरी में जा पहुँचे। सर्वप्रथम जिनमन्दिर की खोज की, फिर नगरी से थोड़ा दूर पर एक वृद्धा के यहाँ सायंकाल विश्राम किया।

प्रातःकाल हुआ। उदित रवि रश्मियों के सुनहले प्रकाश में शुभ शकुनों के साथ नगरी में प्रवेश किया। वहाँ किसी अगम्य (गुप्त) स्थान में खटिया और यष्टी की स्थापनाकर दोनों ने भोजन किया। फिर स्वयं ने अनन्तर हाथ में दिव्य यष्टी-छड़ी लेकर प्रियामिलन की आशा से नगरी में प्रवेश किया। मन्दिर का पता पूछता हुआ कुछ ही कदम गया होगा कि सम्मुख आते ही दुष्ट मायाचारी अथर्णव मन्त्री को देखा अनर्थ की आशंका से कुमार ने उसकी दिव्यदृष्टि पड़ने के पूर्व ही कुबड़े का रूप धारण कर लिया। वह नगरी में इधर-उधर घूमने लगा। 'इस समय यह अथर्णव बलवान है, कहीं मेरा भेद न जान ले' ऐसा विचार कर अपनी प्राण-प्रिया के पास भी वापिस नहीं आया।

इधर शशिप्रभा सोचने लगी शाम पड़ गयी, रात्रि भी आ गयी। हाय! अभी तक मेरा प्राणप्रिय नहीं आया। आखिर उस

गुप्त स्थान में वृद्धा से शशिप्रभा ने पूछा — माँ! रात्रि हो गयी किन्तु तेरा पुत्र अभी तक नहीं आया। हाय, क्या किसी दुर्जन ने उस रूप गुणराशि का कुछ बिगाड़ तो नहीं किया? क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? माँ! मैं प्रिय के वियोग में एक घड़ी भी बिताने में समर्थ नहीं हूँ। अवश्य प्रातःकाल तक मेरे प्राण पखेरु उड़ जायेंगे। माँ कोई उपाय करो।

आंसू पोंछ सान्त्वना देते हुए वृद्धा बोली—धैर्य धारण कर। प्रातःकाल तक तेरा पति नहीं लोटा तो तू यहाँ इस नगरी में श्री 1008 आदीश्वर भगवान का मन्दिर जिनालय है, वहाँ जाकर अन्न-जल का त्याग कर यदि तू उनके सम्मुख विधिपूर्वक उनका सम्मान कर ठहरेगी तो अवश्य तुझे तेरे पति से मिलान होगा। वृद्धा के वचनों में विश्वास कर किसी न किसी प्रकार अति कष्ट से रात्रि व्यतीत की। पति वियोग से खेदखिन्न, व्याकुल चित्त श्रीजिन भवन (चैत्यालय) में पहुँच श्री आदीश्वर भगवान के दर्शन किये। स्तवन किया। नमस्कार किया और विनय से नम्रीभूत प्रार्थना करने लगी, हे प्रभो! मुझे मेरे पति से मिलन नहीं होगा, तब तक मेरे आहार-जल का त्याग है। इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञा ले, उन पहली दो महिलाओं के पास खड़ी हो गयी। मौन धारण कर लिया।

महीपाल की तीनों प्रिया चित्राम-सी अचल, स्थिर हो गयीं। जैसे कर्मकालिमा नाश करने के लिए कोई योगी ध्यान लगाये हो। न हिलें, न चलें, न बोलें। ज्यों की त्यों पुतली एकाग्र ध्यानारूढ़ हो गईं। विवेकीजन इनकी दशा देखकर विचार करने

लगे कि ये कोई नाग कन्याऐं हैं या अप्सरा? किस हेतु से यहाँ अन्न-जल का त्याग कर खड़ी हैं।

इन तीनों की चर्चा वार्ता सर्वत्र फैल गयी। नगरी के प्रत्येक कोने से नर-नारी दल आने लगा। कौतुक से सब अधरी थे—मन्दिर में जाने-जानेवालों की चहल-पहल मच रही थी। किसी को भी इनके मन का भेद समझ में नहीं आया। इन दर्शकों में से कोई भद्र पुरुष पुरी के नरेश विजितारी के पास गया और इन तीनों वनिताओं का यथावत् स्वरूप निवेदन किया। 'हे नराधिप! तीन परदेशी स्त्रियाँ पुतिलयों के समान एकदम मौन ले, प्रभु के सम्मुख ध्यान-मग्न हैं। उनका रूप सौन्दर्य अद्वितीय है। न हिलती हैं, न डुलती हैं, न भाषण करती हैं, न भोजन ही करती हैं। उनकी रूपराशि अभूतपूर्व (अलौकिक) है। उनका मुख चन्द्रमा को भी जीतनेवाला है। नेत्रों की शोभा से कमलों को भी तिरस्कृत किया है। स्वर्ण वर्ण शरीर कुन्दन को भी लज्जित करता है। उनके शरीर आंगोंपांग सर्वांग सुन्दर है। अनुकम केश राशि है। हे नरेश! अधिक क्या कहूँ, उनकी शोभा उनमें ही है। आप ही इस विषय में प्रमाण है। इस प्रकार उस पुरुष ने राजा के समीप विज्ञप्ति की।

आश्चर्यचकित कौतूहल भरे राजा ने परिवार सपुरजन सहित जिनमन्दिर की ओर प्रयाण किया। सर्वप्रथम श्री 1008 आदीश्वर प्रभु को विधिपूर्वक हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। तत्पश्चात् उन तीनों महिलाओं से बोला, आप कौन हैं? कहाँ से आई हैं? किस अभिप्राय से चित्रवत् स्थित हो? किस कारण से

जीवन की आशा छोड़ दी है ? किस साधना के लिए आप इतना कष्ट परीषह सहन कर रही हैं ? अनेक प्रश्न किये जाने पर भी राजा उत्तर पाने में असमर्थ रहा। उसका मन उत्सुक था, हृदय लालायित था, उनके साथ वचनालाप करने को, परन्तु निराशा ही मिली।

उसी समय भूपति ने नट मण्डली को बुलाकर उन्हें बुलवाने की आज्ञा दी। नाटों ने हर प्रकार की नाट्य-कला प्रयुक्त कर चेष्टा की, किन्तु सब विफल हुई। न बुला सके, न हंसा सके। राजा हैरान था कि क्या करें ? तब नृपति ने सेवकों को आज्ञा दी कि नगर में घोषणा (डोंडी) कराओ, जो उत्तम पुरुष अपनी कला, विद्या, उपाय से इन रमणियों को बुलवाबेगा, वह राजदरबार में एक लक्ष दीनार पारितोषिक में प्राप्त करेगा। नगर में यह ध्वनि घोषित हो गई। चारों ओर यही चर्चा, यही वार्ता, इसी का बोलवाला था। चारों ओर पहट लिए घोषक घूम रहे थे। मार्ग में एक कुब्जक ने पूछा — तुम क्या घोषणा कर रहे हो, मैं अपनी विद्या के बल से उन तीनों को बुलाने में समर्थ हूँ। अवश्य ही मैं वचनालाप सहित कर दूँगा। कुब्जक के वचन सुनकर किंकर मुकस्कराये। कुछ सोचा और उसे साथ में लेकर मन्दिर की ओर चले।

अशोभ, हास्य का पात्र, काला शरीर, कुब्जक, दुबला-पतला लड़खड़ाते पग रखता, डगमगाता चलने लगा। मार्ग में सूखे ताड़ के पत्र एकत्रित कर मोटा शास्त्र बना लिया। कितने ही बाल वृद्ध हास्य करते हुए साथ-साथ चलने लगे। लकड़ी टेंकता,

कर में मोटी पुस्तक, वह ज्यों-त्यों राजा के समीप मन्दिर में पहुँचा। विनयपूर्वक श्रद्धा भक्ति से प्रथम आदि प्रभु को नमस्कार किया और पश्चात् राजा को आशीर्वाद दिया।

अवनिपाल उस अजनबी बेरूप कुब्जक को देख विस्मय करते हुए विनय से बोले — हे कुब्जदेव! आपके हाथ में यह कौनसा शास्त्र है ? आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? आपने किन-किन शास्त्रों का अध्ययन किया है ? यदि आप कोई विशेष कला, विज्ञान विद्या में कुशल हैं तो इन तीनों को वचनालाप कराओ।

राजा की प्रश्नावली पूर्ण होने पर कुब्जक बोला — हे नराधीश! मैं अष्टांग निमित्त का ज्ञाता हूँ, यह अष्टांग निमित्त शास्त्र है। देव ने प्रसन्न होकर मुझे यह विद्या दी है। यह पुस्तक बड़ी चमत्कारी है। साधारण जन इसे देख-पढ़ नहीं सकते। जिस समय देवराज ने यह पुस्तक मुझे दी, उस समय देववाणी हुई कि जो पुरुष शीलवान पुरुष और सती स्त्री के द्वारा उत्पन्न होगा, वही इस पुस्तक की वर्णमालिका, शब्दमालिका को देख-पढ़ सकता है। विजाति इसे नहीं पढ़ सकता अथवा जो कुल्टा जार स्त्री अनेक पुरुषों को सेवन करे, उससे उत्पन्न सन्तान को भी विजाति कहते हैं। ऐसा मनुष्य इसके अक्षर नहीं देख सकता। हे राजन! यह पुस्तक बड़े देव की दी हुई है। किसी साधारण मनुष्य की नहीं है। इससे द्विजाति (शुद्धि जाति) विजाति (अशुद्धि व्याभिचार) की लक्षणा परीक्षा हो जाती है।

राजा ने आश्चर्यचकित हो कहा—मैं तुम्हारे इस ग्रन्थ को

देखना चाहता हूँ। तब उस बनावटी कुब्जक ने पुस्तक की पूजा कर ''ॐ ह्रँ फट्'' इन अक्षरों का उच्चारण करते हुए राजा के हाथ में पुस्तक प्रदान की। उस चमत्कारित पुस्तक को उलट-पलट कर राजा ने तीव्र दृष्टि से देखने पर भी एक भी अक्षर दिखलाई नहीं दिया, तब राजा ने विचारा कि क्या मैं विजाति हूँ, जो इस पुस्तक में एक भी अक्षर नहीं देख पा रहा हूँ? जो हो, यदि इस समय कह दूँगा कि मुझे एक भी अक्षर दिखलाई नहीं पड़ता तो लोग मुझे विजाति समझ मेरा हास्य करेंगे। निन्दा पात्र बनूँगा। यह बड़े कष्ट की बात है। इस रहस्य को छुपाकर रखना चाहिए। लोक निन्दा न हो, ऐसा उपाय करना चाहिए। इस समय मन में विचार कर कुलहीनता के भय से सिर हिला कर कहा, 'अहो' यह पुस्तक बड़ी प्रभावशाली है। इसके अक्षर अनोखे ललित हैं। इसकी बनवट सुन्दरता कौन वर्णन कर सकता है? वास्तव में यह देवीपुनीत दिव्य ग्रन्थ है। इस प्रकार कहते हुए पुरोहित को पढ़ने के लिये वह पुस्तक दी। पुरोहित जी ने उलट-पलट कर पन्ने देखे, पर क्या दिखता, वे तो कोरे पत्र थे। पुरोहित बेचारा हैरत में पड़ गया। क्या कहे, यदि सत्य बोलता है तो विजाति-जार की सन्तान सिद्ध होता है। नीच कुलोत्पन्न सिद्ध होने पर राजा पुरोहित पद से बहिष्कृत कर देगा, यह बड़ा भय है। अपनी रक्षा करनी चाहिए, इसप्रकार सोच दम्भ से राजा की हाँ में हाँ मिलाकर बोला, वाह रे पोथी! अक्षरों की बनावट कमाल की है। ऐसी सुन्दरता अन्यत्र नहीं मिल सकती। यह बेजोड़ पुस्तक है। इस प्रकार सकल लोक समूह के समक्ष वह कह रहा

था, उसी समय अर्थणव मन्त्री वहाँ आया और बोला—क्या कौतुहल है? राजा ने उसे पोथी पुस्तक दिखलाते हुए कहा देखो, इसके कितने अनुपम अक्षर हैं। ये अक्षर शुद्ध कुल जातिवाले को ही दिखाई देते हैं। विजातिवाले को नहीं। तब मन्त्री ने बड़े आदर से पुस्तक ग्रहण कर हर्ष से उछलते हुए बोला—हाँ, हाँ आप ठीक कहते हैं। यद्यपि उसे कुछ नहीं दिखाई दिया किन्तु यह सोचकर कि राजा और पुरोहित को तो अक्षर दिखलाई पड़ रहे हैं और मुझे नहीं दिखते तो मैं विजाति ठहरा। यह देव वाणी मुझे कुलहीन घोषित करती है, हो सकता है कामान्ध हो मेरी माँ ने पर पुरुष सेवन किया होगा। परन्तु इस निन्द्य कर्म को कैसे प्रकट करूँ। बात सत्य प्रतीत होती है। क्योंकि मैं कुकर्मी हूँ। मैंने महीपाल की प्रिया को विकार दृष्टि से देखा और महीपाल को समुद्र में गिराया, यह दिव्य पुस्तक मेरे और मेरे कुल के दुराचार को प्रकट प्रत्यक्ष स्पष्ट दिखा रही है। राजा यदि मेरा भेद जानेगा तो मुझे नीच समझकर सर्वधन हरण कर राज्य से अपमानित कर निकाल देगा। इसी विचार से वर्णों की अत्यन्त प्रशंसा करने लगा। इसी प्रकार अन्य सामन्तादि भी अपनी नीचता के प्रकट भय से उस पुस्तक की वर्णमाला का असत्य गुणगान करने लगे।

अब मन्त्री विचार करता है कि मध्य स्थित स्त्री मेरी है, यह राजा से कहूँ या नहीं कहूँ। पहले देखूं कि यह निमित्त ज्ञानी क्या कहता है? निमित्त का फल सुनकर ही जैसा होगा प्रकट करूँगा। ऐसा विचार कर मौन ही रहा।

पृथ्वीपति ने विनयपूर्वक कुब्जक से प्रार्थना की कि हे विद्वद्वर!

पुस्तक की महिमा तो परिपूर्ण देखी और जानी, अब इन तीनों को वचनालाय कराओ। राजा की प्रार्थना सुन कुब्जक महीपाल बोला, ठीक हैं, मैं अवश्य इनको वचनयुक्त करूँगा। 'देवाधिदेव अरहन्त प्रभु तीनों लोक के नाथ को प्रथम मेरा नमस्कार हो', इस प्रकार उच्चारण कर पुस्तक हाथ में ले ली भलीभाँति बांचने का अभिनय करता हुआ पढ़ने लगा। अहो, राजन्! सावधानी से सुनो।

★ ★ ★

अवन्ती नगरी में राज नृसिंह हैं। उसका प्रिय पुत्र महीपाल था। नृप के द्वारा अपमानित किये जाने पर अपनी प्रिया सोमश्री को साथ ले भृगुकच्छ नगर में आया। पुनः कटाह द्वीप जाने की इच्छा से प्रियासहित जहाज में आरूढ़ हुआ। जहाज चला, दैवयोग से वायु विपरीत चली। समुद्र की तरंगों से तड़ित जहाज फट गया। खण्ड-खण्ड हो गया। हे राजन्! आगे का वृतान्त कल कहूँगा।

इतना सुनते ही सोमश्री अधीर हो उठी, यह कल 'मेरे पति का समाचार सुनाएगा तो मैं आज ही क्यों न पूछ लूँ!' ऐसा विचारकर तुरन्त कुब्जक को प्रणाम कर हाथ जोड़ कहने लगी — हे सुन्दर! मुझ पर दया कर बतलाओ 'मेरा प्रिय महीपाल जीवित है या मर मर गया?' कुब्जक हंस कर राजा से बोला— हे राजन! देखो, मेरी विद्या का सामर्थ्य! एक तो बोली। 'प्रत्यक्षस्य किं प्रमाणं' राजा विजितारि उत्सुक हो कहने लगा, हे भव्य! इन दोनों को भी वाचाल करो। तब कुब्जक बोला सुनो—

वह महीपाल समुद्र में गिरा, एक फलक उसे मिला, उसी के सहारे समुद्र पार किया। कटाह द्वीप के रत्नपुर नगर में पहुँचा वहाँ रत्नों की परीक्षा कर गान विद्या के बल से मदोन्मत्त हाथी को वश में किया। राजा ने प्रसन्न हो अपनी सुन्दर सुकुमारी पुत्री चन्द्रलेखा का विवाह उसके साथ कर दिया। कुछ दिन सुख से भोगकर राजाज्ञा से चन्द्रलेखा प्रिया और अथर्णव मन्त्री को साथ ले जहाज से प्रस्थान किया। अब आगे वृतान्त प्रातः दूसरे दिन सुनाऊँगा। इस प्रकार कहकर चुप हो गया।

यह समाचार सुनकर चन्द्रलेखा डगमगा गई, वह विचारने लगी, इस कुब्जक ने वृतान्त तो मेरे पति का ही कहा है। यह आगे की बात भी जानता होगा। आज ही पूछ लेना चाहिए। कुब्जक के उठने के पहले ही चन्द्रलेखा बोली — हे निमित्तज्ञ! ज्योतिषी! महाराज! उसके आगे क्या हुआ? मुझे शीघ्र ही बतलाइये? हे महाज्ञान निधि! मुझ अबला पर दया कर मेरे पति का वृतान्त बतलाइये कि मेरा प्राणप्रिय जीतिव है या नहीं?

कुब्जक राजा से बोला, देखो, मेरी करामात! दूसरी को भी बुलवा दिया। अब देखो तीसरी को भी बुलवाता हूँ। जब अन्धकार को चीरता जहाज रात्रि में चला जा रहा था, अपनी प्रिया चन्द्रलेखा सहित सुखोपभोग कर राजकुमार महीपाल निद्रादेवी की गोद में सो गया। तब दुष्ट दुराचारी अथर्णव मंत्री ने उसे उठाकर समुद्र के अगाध जल में फेंक दिया। एक 'मगर' तैरता हुआ मिल गया। वह उछलकर उसकी पीठ पर बैठ, पार होकर सिंहलद्वीप में आया। यहाँ तापस कन्या के साथ विवाह किया। उसे साथ

लेकर इस नगरी में आया। यहीं किसी वृद्धा स्त्री के घर अपनी प्रिया शशिप्रभा को छोड़ नगर देखने के लिये आया। वहाँ मार्ग में अथर्णव मन्त्री को देखा। आगे का वृतान्त कल कहूँगा। यह कहकर मौन हो गया।

तब तीसरी पत्नी शशिप्रभा बोली—हे देवज्ञ! आगे क्या हुआ, सो बतलाओ?

इसी मध्य विजितारि राजा विचारने लगा—'अथर्णव तो यही है क्या? यह भी सागर तिर कर आया है। अथवा एक नाम के कई व्यक्ति हो सकते हैं। यह तो सज्जन प्रतीत होता है और कोई दूसरा अथर्णव हो सकता है।' विचारकर मौन ही रहा।

इधर अथर्णव विचारने लगा — चन्द्रलेखा ने जो कुछ पूछा है, उसे यदि कुब्जक ने राजा को बतला दिया तो मेरा सारा भण्डाफोड़ हो जायेगा और मेरा दुष्कृत्य प्रकट होगा। इस समय न तो मैं चन्द्रलेखा को कुछ कह सकता हूँ और न कुब्जक को ही रोक सकता हूँ। यह महासंकट आया है। 'इधर गिरुँ तो कुँआ, उधर पड़ूं खाई' कहीं ठिकाना नहीं है। राजा मेरा दुराचार प्रकट जान मेरी सम्पत्ति तो लेगा ही निन्दक भी बनूँगा। यदि राजा बिगड़ा तो प्राण दण्ड भी दे सकता है। इस समय 'प्राण माल सब संकट में है।' अथर्णव किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। फिर सोचा, आगे सुनना चाहिए कि क्या कहता है कुबड़ा। अब भाग भी तो नहीं सकता हूँ। सुनूं इसके निमित्तज्ञान का अन्त, पीछे भी भाग जाऊँगा? तर्क-वितर्क से व्याकुल अथर्णव की विचित्र दशा थी। असमंजस में पड़ा था। सोच-विचार कर वहीं बैठा रहा।

कुब्जक ने राजा से निवेदन किया — हे भूपाल! मैंने तीनों नारियों को बुलवा दिया। आप अपनी घोषणा के अनुसार एक लाख दीनार दिलाइये। अवलिपाल बहुत प्रसन्न हुआ। अथर्णव मन्त्री को आज्ञा दी है। सचिव! 'एक लाख से अधिक दीनार इस निमित्तज्ञानी को दो।'

उस समय चन्द्रलेखा विचारने लगी, 'हाय मैं अवसर चूक गयी। मैंने इस दुष्ट अथर्णव का भेद राजा से प्रकट नहीं किया। इस समय इस दुराचारी का निग्रह नहीं कराया। इस पापात्मा को पूर्व पुण्य शेष था जो काल के गाल से निकल गया। अब क्या हो सकता है? खैर, पतिदेव का मिलन ही हमें श्रेष्ठ है। यदि ऐसा होगा तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगी।' इस प्रकार सन्तोष धारण कर मौन रही। उधर राजा विजितारी उठकर अपने महल की ओर गया।

इधर मन्त्री अपने सौभाग्य की सराहना करने लगा। अहा, मैं कितना पुण्यवान हूँ कि आज मृत्यु पर विजय पायी। न तो राजा ने ही अथर्णव के विषय में कुब्जक से पूछा और न इस विशेषज्ञ कुब्जक ने राजा को आगे की घटना कही। किन्तु अब विचारणीय प्रश्न है कि कहीं राजा ने इस कुब्जक को एकान्त में बुलाकर पूछा तो क्या होगा? मेरा दुराचार प्रकट हुआ तो हर प्रकार से मेरी क्षति है–नाश है। यह कुब्जक अवश्य भेद खोल देगा। इसलिए भेद प्रकट होने के पूर्व ही किसी उपाय से इस कुब्जक को प्राणरहित कर देना चाहिए। इसकी मृत्यु से राजा कुपित भी होगा तो क्या? मेरे पास अटूट धनराशि है। बहुत–सा धन देकर

राजा को प्रसन्न कर लूँगा। फिर राजा तो कानों से शासन करते हैं आँखों से नहीं। मैं अपनी वचन कला से भी राजा को स्ववश कर सकता हूँ। उस ईर्ष्यालु घातक ने उसी समय बहुत से राजसेवकों को बुलाया और कहा — देखो, अभी यह कुब्जक राजमन्दिर की ओर अपना पारितोषिक (इनाम) लेने जायेगा। सो तुम लोग एक साथ मिलकर इसका काम तमाम कर देना अर्थात् 'इसे जान से मार देना।' सेवकों को इस प्रकार आज्ञा देकर उसने बगुला भक्ति दिखलाते हुए कुब्जक से कहा—'प्रिय मित्र! आपके निमित्त से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे अपार हर्ष है, इसलिए आपको राजमन्दिर की ओर से तो एक लाख दीनार तो दूँगा ही, मेरे घर से भी बहुत कुछ आपको भेंट करना चाहता हूँ।' इस प्रकार कह 'विषकुम्भ पयोमुख' अथर्णव अपने घर गया।

कुब्जक विचारने लगा — यह अथर्णव महा कपटी है। विश्वासघाती का कपट शीघ्र नहीं जाता। इस पाखण्डी का कितना ही कुपरिचय तो राजा को करा दिया, जो कुछ बचा है, उसे भी अवसर पाकर प्रकट करूँगा। यद्यपि सज्जन बुद्धिमान सरल से सरल परिणाम रखता हो, किन्तु कपटी 'शठं शाठयं समाचरेत्' करना पड़ता है।

राजमन्दिर के चारों ओर शास्त्रास्त्र लिए सेवक जन तैयार हैं। किसी के पास भाला है तो किसी के हाथ में कुन्तल, मुगदर इत्यादि। सब एक टक से कुब्जक का मार्ग देख रहे हैं। इसी समय लीलापूर्वक गमन करता हुआ वह कुब्जक वहाँ आया। सरल चित्त, पंच णमोकार मन्त्र का जाप करता हुआ, पंच परमेष्ठी

का ध्यान करता हुआ चला जा रहा है। आदीश्वर प्रभु का ध्यान और स्मरण करता हुआ ज्यों ही राजमार्ग में पहुँचा कि पूर्व तैनात भृत्यों ने चारों ओर से उसे घेर लिया। मारो, पकड़ो। वह आया, यह कहते हुए उस पर प्रहार करने लगे। उस समय कुब्जक ने अपनी दिव्य यष्टी-लकड़ी को सम्भाला और एकाकी अकेले ने ही सबको मार भगाया। जिस प्रकार शेर की गर्जना सुनकर वन के गीदड़ सियार भागे हो। कितनों को घायल किया, कितने ही प्राण रहित हो गये। किसी का सिर फोड़ा, किसी की टांग तोड़ी, किसी का हाथ, किसी की नाक तो किसी का कान काट गिराया। सबका शरीर छिन्न-भिन्न कर दिया। रक्त से लथ-पथ योद्धा मन्त्री के पास पहुँचे। चिल्लाते हुए हाय-हाय करते गिड़गिड़ाते सुभटजन कहने लगे — 'अहो मंत्रिन्! हमें उस कुब्जक को मारना तो दूर रहा, पकड़ भी नहीं सकते। उसके मारने की क्या बात, हम स्वयं ही प्राण बचाने में असमर्थ हैं। हमारी दुर्दशा प्रत्यक्ष है। आप जो उचित समझो करो। हम मरने के लिए उसका सामना नहीं करेंगे।

इधर कुब्जक मन्दिर में लौट आया। उसी समय तीनों रानियों ने दौड़कर उसके पास आयीं। हाथ जोड़ विनयपूर्वक कहने लगीं। हे निमित्त ज्ञानिन्! आप हमारे पति का सर्व सत्य वृत्तान्त कहिये। हमारा प्राणनाथ जीवित है या मर गया? आपके वचनानुसार हम यथोयोग्य क्रिया करेंगी। आप समाधानपूर्वक कहिये क्योंकि हमारा जीवन-मरण पति के साथ है। सतियों की यही रीति है, नारी का यही धर्म है, धर्मानुकूल विवाहिता पति के

अतिरिक्त अन्य पुरुष का सेवन नहीं करती। पति जीवित है तो उसके साथ सुख-दु:ख का अनुभव करती है और मर गया तो शील, संयम, तप कर परलोक की सिद्धि करती है। अत: आप जैसा निर्णय देंगे, हम वैसा ही करेंगी। इस प्रकार तीनों के दीन वचन सुन, पति भक्ति में प्रगाढ़ देखकर कुब्जक ने अपना असली रूप प्रकट किया। तीनों रानियाँ प्रीतम को देख, रोमांचति हो गईं। आनन्द से विभोर हो उठीं। मानों चकोरी को सूर्य मिला, कुमुदिनी को चाँद मिला हो। मयूरी मेघ को पाकर और साधु समाधि को प्राप्त कर जैसे हर्षित होता है, उसी प्रकार वे तीनों प्रीतम का दर्शन पाकर हर्षित हुईं। हर्षातिरेक से कंठ गद्‌गद् हो गया, प्रेमाश्रुओं की झड़ी लग गई, आनन्द से गात्त पुलकित हो गया, न बोल पा रही थीं, न कुछ करना ही सोच सकती थी। इतने ही में बाहर से कुछ शोर-गुल सुनाई दिया।

अरे, यह क्या ? ठीक है यह दुष्ट अथर्णव है, क्रोध से लाल, झल्लाता हुआ चला आ रहा है। महीपाल ने तुरन्त अपना रूप बदला। कुब्जक अब सामने था। हाथ में एकमात्र लाठी थी। मन्त्री की प्रेरणा से सेवकों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। नाना आयुधों से घोर युद्ध करने लगे। स्वयं अथर्णव भी भयंकर भुजंग सदृश हुंकारता उस पर झपटा। अकेले महीपाल ने लाठी के बल पर उसे परास्त किया। सबने आयुध डाल दिये। बहुत काल तक मन्त्री के साथ युद्ध कर जीवित बाँध लिया। जिस प्रकार चोरों के समूह को लौह श्रृंखला से जकड़कर जेलखाने में पटके, वैसे सर्व शरीर बन्धयुक्त कर उसे उन तीनों सुन्दरियों के समीप डाल दिया।

मन्त्री के युद्ध करने और बन्धन में जकड़े जाने की बात राजा के समक्ष पहुँच गयी। राजा आश्चर्यचकित हो गया। हैं! यह क्या हुआ? क्यों हुआ? कैसे हुआ? इत्यादि प्रश्न एक साथ मस्तिष्क में उठे। प्रश्नों का समाधान और अपने अथर्णव मन्त्री का दुराचार ज्ञात कर राजा सावधान हो गया। वह निमित्तज्ञानी से क्षमायाचना करने के लिए निकल पड़ा।

ओहो! अकेला महाबलवान है। इससे बैर विरोध करना उचित नहीं, इसके पास दैवी शक्ति है। प्रत्यक्ष देव जिसका किंकर है, उसके बल की क्या सीमा? साक्षात् चमत्कारी पोथी है। इस पुस्तक के सामने औषधि, मन्त्र-तन्त्र आदि सभी व्यर्थ हैं। देवत्वशक्ति का सामना भला कौन कर सकता है? यह सामर्थ्ययुक्त है। शक्तिशाली से विरोध करना उचित नहीं है। जो बुद्धिमान विवेकी स्वहित चाहनेवाले पुरुष हैं, वे मन्त्रवादी, परिपूर्ण निमित्तज्ञ और वैद्यराज, इन्हें कोपयुक्त नहीं करते हैं। इस प्रकार विचार कर राजा विजितारि अपने कुटुम्ब परिवार को साथ लेकर कुब्जक महोदय के पास गया। विनम्रता से राजा ने पूछा—हे विशेषज्ञ! यह क्या माजरा है? मन्त्री ने क्या अपराध किया? आपने क्यों इसे बन्दी बनाया? इसने आपके साथ दुर्व्यवहार क्यों किया? कृपया सर्व वृतान्त मुझे बताइये।

यह सुनकर कुब्जक ने शान्तभाव से उत्तर दिया, राजन्! राजन्! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझसे पूछने की आवश्यकता नहीं, आप इन तीनों देवियों—रानियों से पूछिये, वे आपको सकल रहस्य स्पष्ट सत्य-सत्य बतलायेंगी। यह सुन, राजा ने आत्याग्रह

से उन तीनों महा-सतियों से पूर्व का सम्पूर्ण चरित्र वर्णन करने की प्रार्थना की।

तीनों रानियाँ हर्ष-विषाद मिश्रित शंकाकुल हो राजा से बोली—हे नृपति! यह कुब्जक हम तीनों के पति हैं। यह इनका यथार्थ रूप नहीं है। मन्त्रबल से इन्होंने यह वेश बनाया है। यह अथर्णव मन्त्री महादुराचारी, पापी, लम्पटी, विषयान्ध है। इसने जहाज से हमारे पति को समुद्र में फेंक दिया और चन्द्रलेखा प्रिया पर आसक्त हो, इससे दुराचार करना चाहा। यह सती पति मिलन की आस से यहाँ आई। यह हमारे प्राणनाथ दीर्घायु होने से हमारे पुण्ययोग से सागर पार कर यहाँ आये। अथर्णव मन्त्री को देखकर कुब्जक का रूप धारण किया। मेरा भेद दुराचार प्रकट होगा। इस आशंका से इस विपरीत बुद्धि मन्त्री ने इनको मारने का षडयन्त्र किया। अब यह कुब्जक इस अधम दुष्ट को बाँधकर हमारे पास लाया।

यह अनहोना वृतान्त सुनकर राजा ने परम आश्चर्य किया। पुनः कुब्जक को अपना असली रूप प्रकट करने की प्रार्थना की।

क्षणमात्र में कुब्जक की माया विलीन हुई। उसके स्थान पर सर्वांग सुन्दर विद्या-बुद्धि सम्पन्न अति मनोज्ञ, नाना कलाओं में प्रवीण महीपाल कुमार उपस्थित हुआ। महीपाल को प्रत्यक्ष-समक्ष देख अथर्णव मन्त्री का शरीर काँप उठा। कलेजा धक-धक करने लगा। हृदय एक साथ धड़का और सहसा सदा के लिये बन्द हो गया। हृदय गति बन्द हो गयी।

मृतक मन्त्री को देख राजा विजितारि बोला—यह पाप का

प्रत्यक्ष फल है। पाप छुपाने से नहीं छुपता, अपितु विशेष भयंकर रूप धारण कर उपस्थित होता है। देखो, यह पाप के भार से स्वयं दबकर सदा को विदा हो गया, कहा भी है 'पाप न छुपे कभी छुपाये, आग न छुपे रुई लपटाये।' एक ओर यह पाप का दुष्परिणाम है और दूसरी ओर पुण्य की महिमा है कि मृत्यु की गोद में भी अमन चैन से क्रीड़ा कर अपना मनोरथ सिद्ध कर रहा है। उग्र पाप पर तीव्र पुण्य की विजय है। नाना प्रकार से पुण्य-पाप का वर्णन कर राजा ने प्रसन्नता से मन्त्री का धन और घर महीपाल को प्रदान किया। अपनी तीनों प्राण प्रियाओं के साथ महीपाल वहाँ सुख से रहने लगा, ये तीनों बल्लभाऐं मानों तीन शक्तियाँ हैं। इनके योग से महीपाल उसी प्रकार शोभायुक्त हुआ जैसे तीन शक्तियों से स्वयंभू राजाओं की (जिनके पास भी तीन शक्तियाँ होती है) 1. मन्त्र शक्ति, 2. उत्साह शक्ति, और 3. बल (सैन्य) शक्ति। महीपाल कुमार ने अपने कला का कौशल, विद्या-बल से राजा विजितारि को रंजायमान प्रसन्न किया। एक दिन राजा ने विचार किया यह पुरुष अति विलक्षण है। इसकी अलौकिक बुद्धि है। यह कला गुण सम्पन्न है। इससे मेरे राज्य की विशेष शोभा होगी। इसके बुद्धि-कौशल की परीक्षा कर इसे मन्त्री पद प्रदान करना चाहिए।

महान वही है, जो अपने आश्रय रहनेवाले को भी महान बना ले। विजितारि राजा विद्या-विज्ञान युक्त था। गुणी और गुणज्ञों का सम्मान करता था। अतः महीपाल के कला-कौशल बुद्धि-कौशल से अभिभूत हो उसकी परीक्षा का निश्चय किया।

★ ★ ★

सभा भरी हुई है। सभासद खचा-खच भरे हैं। कुमार भी यथास्थान आसीन है। महाराज आज क्या 'विशेष कार्य' उपस्थित करते हैं, सब इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय राजा ने महीपाल कुमार को सम्बोधकर कहा—हे कुमार! मेरा ऐरावत नाम का यह हस्ती है। तुम इसको तौलकर वजन प्रमाण बतलाओ। भूप के वचन सुन समस्त सभा सन्न हो गई। एक-दूसरे का मुख देखने लगे। सब मौन थे। इसप्रकार के विषम कार्य में किसकी बुद्धि प्रवेश करती? किन्तु विद्या-निधान विशेषज्ञ महीपाल ने सहर्ष राजाज्ञा स्वीकार की। सर्वजन दाँतों तले अंगुली दबा गये। राजा स्वयं विस्मय से अभिभूत था। सब परीक्षा परिणाम देखने को उत्कण्ठित थे।

कुमार ने एक सुन्दर और सुदृढ़ नाव मँगाई, हाथी को नाव में सवार किया। नाव को अगाध जल में ले गया। यहाँ नाव का जितना भाग जल मग्न हुआ, उस स्थान पर लकीर निशानी कर दी। नाव को वापिस तट पर ले आया। गजराज को उतार दिया। पुनः नाव में छोटे-बड़े अनेक पाषण भर दिये, नाव को उसी स्थान के जल में ले गया, जब तक निशान पर्यन्त पानी आया। इस प्रकार निर्धारण कर नाव वापिस ले आया। पत्थर निकाले। उनको तौलकर हाथी का वजन निर्धारित किया। राजा को जाकर गजराज का तौल बतला दिया। राजा ने अति हर्षित हो महीपाल का बहुमान कर वस्त्राभूषण इनाम में दिये।

★ ★ ★

एक दिन विजितारि राजा ने सरोवर के मध्य एक उत्तुंग

पाषाण स्तम्भ गाढ़कर समस्त सभासदों को कहा कि जो पुरुष सरोवर के तट पर खड़ा रहकर इस स्तम्भ को रस्सी बाँधेगा उसे मैं अपना मन्त्री बनाऊँगा। सभी को राजमन्त्री पद की अभिलाषा थी, सबके मुँह में पानी आ गया, परन्तु शर्त इतनी जबर्दस्त थी कि सब मन मसोस कर रह गये। सभी विकल्पों में फँसे, किसी का उपाय नहीं चला। कुमार हताश नहीं हुआ। होता भी क्यों 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' बुद्धिबल के समक्ष कोई कार्य असम्भव नहीं है।

महीपाल ने सरोवर के तट पर मध्य के स्तम्भ के बराबर का दूसरा स्तम्भ उसके शिखर पर रस्सी बंधवाई। उसके छोर-किनारे को लेकर तेजी से सरोवर के चारों ओर घूम गया। अबद्ध बेरोक-टोक बुद्धि संचारवाले महीपाल ने तट पर रहते हुए ही जलस्थ स्तम्भ को रस्सी बाँध दी। राजा ने इस कौतुक से प्रसन्न हो महीपाल कुमार को सर्व-सम्मति से मन्त्री पद पर आसीन किया।

मन्त्रीपद महोत्सव मनाया गया। राजा प्रजा ने उत्सव में भाग लिया। पश्चात् महीपाल कुमार भी अपने पूर्वभव का पुण्यभोग का फल आनन्द से भोगने लगा। राजा भी नये मन्त्री की कला चतुराई से सन्तुष्ट हुआ। परिजन-पुरजन सभी को महीपाल ने अपने गुणों से अनुरक्त कर लिया, अनेकों उपायों से उसने अपनी सीमा के कई राजाओं को जीतकर अपने अधीन कर लिया।

वह राजा के षट्गुण 1. सन्धि, 2. विग्रह, 3. पान (यान), 4. आसन 5. द्वैग्धीभाव 6. संस्थान का ज्ञाता तथा 1. मन्त्रशक्ति,

2. बलशक्ति और उत्साहशक्ति का जानकार था। सामान्य जनों की बुद्धि से अगम्य बुद्धि वैभववाले उस महीपाल ने कभी युद्ध में पराजय नहीं देखी। सतत विजयी हुआ। महान बड़े-बड़े बलशाली राजाओं को परास्त कर विजितारि के आधीन कर दिये। सभी के साथ नेक-उचित व्यवहार करता था। इसका नाम सुनकर ही राजा इसके आधीन हो जाते थे। यह प्रजा के हृदय का शासक बन गया।

राजा, महीपाल कुमार की राजनीति देखकर मुग्ध थे, राजसभा में उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहते। देखो, इस कुमार की शक्ति और युक्ति कितनी प्रबल है? समस्त प्रतिकूल नृपति अनुकूल कर दिये। यह कोई महान व्यक्ति है, रूप सौन्दर्य भी कम नहीं है। उत्तम कुलोत्पन्न नर रत्न मालूम पड़ता है। अतः मेरी कन्या सौभाग्य सुन्दरी के अनुकूल वर रत्न है। कन्या के साथ करमोचन समय में अति वैभवपूर्ण राज इसे दूँगा।

दृढ़ निश्चय कर राजा ने महीपाल से जाति कुल वंश परम्परा पूछी। अनुकूल पाकर उसने बड़े धूमधाम से वैभव के साथ अपनी कन्या रत्न जैनागम विवाह पद्धति अनुसार महीपाल को प्रदान की। मानों रामचन्द्र और सीताजी का विवाह हुआ हो। विवाह विधि सम्पन्न होने के अनन्तर कर-मोचन (हथलेवा) के समय विजितारि ने अति हर्षोत्फुल्ल हो अपना आधा राज्य भेंट किया। राजा महीपाल भी चारों प्रियाओं के साथ सुख से राज्य भोग सेवन करने लगा। जैसे महाराज दशरथ अपनी चार समुद्र समान रानियों के साथ आनन्द सागर में मग्न हों। महीपाल राजा

नाना भोग भोगता हुआ भी अपने धर्म कृत्यों के सम्पादन में विलम्ब नहीं करता था। षट्कर्मों का पालन करना उसका नियमित रूप से चलता रहा।

★ ★ ★

निरुत्सुक कुमार एक दिन अपने राज्य वैभव को देखकर विचार मग्न हो गया। सम्पत्ति वही सार्थक है, जिसे स्वजनों के बीच भोग जाये और परिजनों को देखने में आवे। मैंने यह प्रचुर लक्ष्मी निज बाहुबल और विद्याबल तथा कलाशक्ति से उपार्जित की है। इसे मिथिलापुरी जाकर राजा नृसिंह को शीघ्र ही दिखाना चाहिए। पण्डितों का कथन है कि विभूति स्वजन, कुटुम्ब, परिवार, मित्रादि और परिजन-शत्रु आदि के देखने में न आवे, वह धन सम्पदा किस काम की? क्योंकि प्रशस्त लक्ष्मी को देखकर स्वजन सन्तुष्ट और परीजन विषादयुक्त होते हैं। अस्तु, मुझे अपनी जन्मभूमि में अवश्य शीघ्र जाना चाहिए।

कुमार ने अपना मन्तव्य अपने ससुर विजितारि को ज्ञात कराया। राजा हर्ष-विषाद के झोंके में पड़ गया। किन्तु कर्तव्य समझकर अपनी अनुमति प्रदान की। नाना प्रकार की सामग्री इकट्ठी कर बड़े-बड़े वीर सामन्त योद्धा साथ में देकर हाथी, घोड़े, रथ, पयादे चतुरंग सेना के साथ शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न में रत्नसंचयपुर से विशालपुरी के लिए कुमार का प्रस्थान कराया। दास-दासी वस्त्रालंकार सभी प्रचुर मात्रा में कुमार को भेंट किये गये।

महीपाल अपनी विभूति का निरीक्षण करता हुआ रानियों सहित खड्डा (खटिया) पर आरूढ़ हो गया। आकाश मार्ग से गमन करने लगा। मार्ग में अनेकों राजा, कुमार महीपाल की युद्ध की कला, वीरता और बुद्धिमत्ता सुनकर भेंट ले ले आये। 'जैसे अनेकों नदियाँ सागर में मिलकर उसकी महिमा बढ़ाती हैं।' उसी प्रकार राजा जन दल-बल के साथ कुमार महीपाल की सेना को बाढ़ के समान वृद्धिंगत करने लगे। वृद्धि सहित महीपाल क्रमशः मालव देश में पहुँच अति रमणीक प्रचुर जलयुक्त सुन्दर भूमि में सेना का डेरा कराया।

मार्ग श्रम दूर कर महीपाल ने श्री जिन भगवान का स्मरण किया। भोजनादि से निवृत हो स्वस्थ चित्त से विचार कर एक कुशल दूत को बुलवाया। भली प्रकार से नीति समझाकर नृसिंह राजा के पास भेजा।

दूत भी निर्भय वेग गति से नृसिंह राजा के पास पहुँचा। सम्यक् प्रकार नमस्कार किया। सभा के मध्य बोला —हे राजन्! जिस महीपाल को आपने धन के अभिमान से राज्य से निकाला था, वही महीपाल कुमार अपने कला-कौशल से प्रचुर बल-सम्पदा के साथ यहाँ आया है। अतः हे राजन्! उसके सम्मुख जाकर योग्य पाहुण गति (अतिथि सत्कार) करो। यदि स्वागत करने की इच्छा नहीं हो तो शीघ्र युद्ध की तैयारी करो। जो तुमने पूर्व में कहा था, वही महीपाल ने किया है। अब आपको सबको मिलाकर शीघ्र उसका स्वागत करना चाहिए। जैसी प्रीति आपके साथ पहली थी, वैसी आज भी दिखायेंगे। इसलिए आपको

सम्मुख अविलम्ब जाना चाहिए। भृत्य के विरोध भरे वचन सुनकर राजा नृसिंह क्रोध में भभक उठा, आँखें, मुँह लाल हो गये। सभासदों से बोला—देखो, ओछे पुरुषों का ऐसा ही स्वभाव होता है कि थोड़ा-सा धन वैभव मिला नहीं कि अहंकार से गर्विष्ट हो जाते हैं। अहंकार से मदोन्मत्त पुरुष विवेकहीन हो गुरुजनों की अवज्ञा से नहीं चूकते हैं। पुनः राजा ने सेवक से कहा — दूत! तू शीघ्र जा तेरे स्वामी से कह कि मैं शीघ्र बड़ी सेना के साथ तेरी पाहुनगति करूंगा। रे दूत! 'सिंह के आगे सियार कितना बलवान है, गरुड़ के समक्ष सर्प की क्या सामर्थ्य है। सूर्य के आगे अन्धकार का समूह कब तक ठहर सकता है ?' उसी प्रकार कल का छोकरा महीपाल तेरा स्वामी मेरे समक्ष कब तक ठहर सकता है ? जा शीघ्र जा, इस प्रकार कोपाकुल हो राजा ने दूत को विदा किया और अति कुपित हो संग्राम के लिए उद्यत हुआ।

युद्ध का समाचार पाते ही स्थिर बुद्धि नाम का मन्त्री राजा के निकट आया हाथ जोड़कर प्रणाम किया। मन्त्री बोला—हे भूपाल यदि मन्त्री स्वामी को हितकर वचन नहीं कहे तो वह मन्त्री किस काम का ? और राजा सावधान चित्त मन्त्री की मन्त्रणा नहीं सुने तो वह राजा भी किस काम का ? राजा और मन्त्री एक विचार होने से राज्य में प्रचुर धन-सम्पदा की वृद्धि होती है और प्रजा सुख-शान्ति से निवास कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ को अनुक्रम से सिद्धि करती है। मन्त्री राजा को हितकर शिक्षा देता है और शिक्षा सुन राजा अनुकूल प्रवर्तता है तो उसका राज्य

भण्डार–खजाना अटूट भरा रहता है। सम्पत्ति स्वयंमेव चली आती है। भो देव! हे राजन्! असमान के साथ युद्ध करना उचित नहीं। कदाचित् विजय भी हो जाये किन्तु यश नहीं होता। यदि पराजय हो तो जगत् विख्यात यश शीघ्र नष्ट हो जाता है। भो नाथ! महीपाल अतिशय बलवान है। महान रणवीर धीर है। उसके पास देवीपुनीत दिव्य–अतिशय है। सुना जाता है कि जितशत्रु और अथर्णव मन्त्री को भी उसने क्षणमात्र में जीत लिया, संग्राम में महीपाल का पराभव (पराजय) करना सरल नहीं है। उसके पास आकाशगामिनी विद्या भी है। हे राजन्! आप विचारिये, जो एकाकी विदेश में जाकर अल्प समय में विख्यात हो गया, अनेकों राजाओं को जीता, इतनी विपुल धनराशि एकत्रित की, विशाल सेना समन्वित कर आया, उसके बल–वीर्य, बुद्धि–पराक्रम का क्या ठिकाना है? अतः सहसा उसके साथ युद्ध करना उचित नहीं। मेरी बुद्धि से आप प्रथम अपने राज्य की सीमा पर शासन करनेवाले जय नाम राजा के पास आदेशपत्र दें कि तुम अपनी शक्ति भर महीपाल का सामना करो। राज्य की सीमा में उसके प्रवेश को निवारण करो। इस प्रकार गुप्त रूप से उसके बल पराक्रम की थाह मिल जायेगी। आगे जय पराजय देख उसके साथ सन्धि–विग्रह करना योग्य है।

दूरदर्शी राजा नृसिंह ने मन्त्री की बात को ध्यान से सुना। वास्तव में उसका कथन तथ्य भरा पथ्ययुक्त, समयानुकूल है, यह निश्चय कर एक कुशल दूत शीघ्र राजा जय के पास भेजा।

पवनगति से बचोहारी (दूत) राजा जय के पास पहुँच गया।

नृसिंह राजा का आदेशपत्र दे नमस्कार कर खड़ा रहा। राजा ने पत्र को देखा और दूत को उचित इनाम दे विदा किया। राजाज्ञानुसार अपना दूत बुलाया और महीपाल के पास भेज दिया। दूत ने महीपाल से प्रणाम कर कहा —हे नरेश! मेरे स्वामी ने आपको आज्ञा दी है आप मेरी सीमा पर डेरा नहीं डालें, आप अन्य मार्ग से चले जाइये।

दूत के वचन सुनते ही महीपाल मुस्कराया। उपेक्षा से बोला, हे भृत्य! तेरा स्वामी जय मानी पुरुषों के मध्य महामानी है। अति उद्धत है। अरे! क्या सियार के भय से शेर अपना मार्ग बदलता है ? जूं के भय से क्या कोई बुद्धिमान अपना वस्त्र छोड़ देता है ? कुत्तों के भोंकने से क्या हाथी गमन बन्द कर देता है ? हे भृत्य! तेरा स्वामी मेरे बल और पराक्रम को नहीं जानता है। इसलिए तुझे यहाँ भेजा है। तू कह देना कुछ बल पराक्रम हो तो शीघ्र सेना लेकर मेरे सम्मुख आवे, देर न करे। पुरुषार्थ पुरुष व्यर्थ बक-बक नहीं करते। कर्तव्य करते हैं। तुम अविलम्ब जाओ। दूत द्रूत गति से चला गया।

रणभेरी बजी। सेना सजी। बिगुल बजा। राजा चला। उधर नृसिंह भी सेना ले प्रच्छन्न रूप से उनका बल पराक्रम देखने आया। महीपाल भी अपनी विशाल सेना ले जय के नगर में आ धमका। दोनों स्वाभिमानी आपस में भिड़े। रणभेरी बजते ही दोनों ओर के सुभट हर्षायमान हुए। कायरों के हृदय कांपने लगे। शूरवीर आगे बढ़े, कायर पीछे हटने लगे। जो भी हो, दोनों सेनाऐं रणभूमि में आ कर युद्ध के लिए तत्पर हुईं।

रथों से रथ, घोड़े, गजों से गज, सवारों से सवार और पैदलों से पैदल भिड़ गये, घोर युद्ध होने लगा। चारों ओर धूल छा गई, अन्धकार व्याप्त हो गया। रक्त प्रवाह बह चला। किसी का सिर, किसी का धड़, किसी का हाथ, किसी का पांव रक्त प्रवाह में तैरने लगे। कहीं हाथी चिंघाड़ते हैं तो कहीं उच्च स्वर से घोड़े हींस रहे हैं। वादियों के नाद के साथ वीरों की आवाज गूँज रही है। पकड़ो मारो, इधर आया, उधर गया, रथ इधर चलाओ, अरे घोड़े की बांध सम्भालो, भागता क्यों है? ठहर जा, देख-देख अभी तुझे स्वर्ग पहुँचाता हूँ, इत्यादि सुभटों की ध्वनियाँ गरज रही हैं, कोई वीर कायर की हंसी कर रहा है, कोई तीर चला रहा है, कोई तलवार का वार कर रहा है, सभी अपने-अपने अनुकूल, कुन्त, भाला, गदा आदि शस्त्रास्त्र सम्भाल रहा है। कई सुभटों शत्रु को जीत कर प्रसन्न हो रहे हैं। इस समय जय राजा के वीरों ने महीपाल की सेना हटाई — पीछे खदेड़ दी। अपनी सेना को पीछे हटते देख महीपाल स्वयं उठा। दिव्य यष्ठी (लकड़ी) सम्भाली, दिव्य खटिया पर सवार हुआ। आकाश में आ डटा। सर्व शस्त्र धारण करनेवाले शत्रुओं से युद्ध प्रारम्भ किया, क्षणमात्र में सारे सुभट भाग खड़े हुए। जैसे तीव्र पवन से घन समूह (बादल) विलीन हो जाता है। रथ, घोड़े, पयादे कोई भी महीपाल के वेग को रोकने में समर्थ नहीं हो सका। भला प्रलय कालीन वायु से उत्थित सागर की अविरल उठती तरंगों को कौन रोक सकता है? वर्षा के मेघों की झड़ी समान बाण-वर्षा से जय राजा की सेना भागने लगी। बड़े-बड़े रणवीर योद्धा युद्ध का अभियान

छोड़ दशों-दिशाओं में तितर-बितर हो गये। बड़े-बड़े विशाल गजेन्द्र यष्टी के प्रहार से अपने-अपने सवारों को गिरा निर्ग्रन्थ साधु समान स्वच्छन्द विचरण करने लगे।

रथों के पहिये निकलकर लुढ़कने लगे और सारथी जान लेकर भाग खड़े हुए। राजा भागते सुभटों को भय और ताड़ना दिखाता, उन्हें युद्ध में स्थिर करता आश्वासन देता। स्वयं रणभूमि में आया महीपाल भी सावधान हुआ। इन दोनों में घोर युद्ध हुआ। गगनांग में देव-देवांगनाऐं भी इस युद्ध से चकित हो गये।

महीपाल ने आते ही प्रथम जय को शस्त्र हीन कर दिया। दिव्य यष्टी के प्रहार से उसके हाथी का गण्डस्थल विदीर्ण किया। रक्त मिश्रित मुक्ता बिखर गये, गजराज भी आहत हो धैर्यरहित हुआ। थामते-थामते भी ठहर नहीं सका। राजा सहित भागा, राजा जय को भागता देख बाकी सेना भी भाग चली। 'सूर्यास्त होने पर भला उसकी किरणें कैसे रह सकती हैं?' जय राजा और उसके सभी वीर भाग गये। महीपाल की सेना में विजय के नगाड़े बजने लगे। जय जयकार गूँजने लगी।

राजा नृसिंह भी इसकी बेजोड़ सामर्थ्य, अद्‌भुत पराक्रम देखकर प्रच्छन्न ही वापिस उज्जयिनी नगरी में आ गया। मन में विचारने लगा। वास्तव में कला-विज्ञान विशेष महत्वपूर्ण है। विद्या-गुण महान् है। मैंने इसे कला-प्रेम के कारण ही निकाला था। आज यह अपने विद्या-कौशल से कला-चातुर्य और विज्ञान-बल से एक विशेष शक्तिशाली धन वैभव युक्त विपुल परिवारवन्त होकर आया है। जो कुछ भी हो, अब मुझे इसे अपने पास रखना

चाहिए। कला–चातुर्य से राज्य की शोभा है। इसकी सामर्थ्य अद्वितीय है। मैं लक्ष्मी का कोरा अभिमान करता था परन्तु यह अत्यल्प समय में ही अतुल वैभव सम्पन्न हो गया। वह भी एकाकी अनजान विदेश में जाकर। अब इस कलावान का उचित सत्कार कर अपने राज्य में रखना चाहिए। इस प्रकार विचार कर एक योग्य चतुर बुद्धिमान अपना प्रधानमन्त्री उस कुमार के पास भेजा।

कुमार उज्जयिनी की ओर प्रयाण करना चाहता था। उसी समय राजा नृसिंह का बुद्धिविधि मन्त्री वहाँ पहुँचा। यथायोग्य कुमार को बड़े आदर स्नेह से प्रणाम किया। कुमार ने भी विनयपूर्वक स्थानादि प्रदान कर उसका सत्कार किया। अत्यन्त कोमल उदार और सत् वचनों द्वारा सम्बोधित कर कुमार से कहा—हे महीपाल! मुझे महाराज ने आपके पास सन्धि के अर्थ भेजा है। प्रथम दूत ने आकर आपके साथ जो विग्रह की बात की, वह भृत्य की उद्धता है। आप उस पर ध्यान न दें। राजा जय ने आपके साथ युद्ध किया, इसमें अपराध नहीं है। वफादार स्वामी भक्त का कर्तव्य स्वामी की आज्ञानुसार चलना है। नृसिंह राजा ने उसे राज्य की रक्षा के लिए ही सीमा पर नियुक्त किया है। अतः आपके प्रभाव से अनभिज्ञ होने के कारण आपके साथ यह अपराध किया। उस सबको क्षमा कर आप प्रसन्न होवें। महाराज आपसे मिलने को अत्यन्त उत्कण्ठित हैं। आपको पहले भी अति स्नेह से देखते थे। अब एक क्षण भी आपको देखे बिना रहने में असमर्थ हैं। आप कृपा कर शीघ्र चलें। सत्पुरुष महान पुरुषों की अवज्ञा नहीं करते। उनके प्रेम का आदर करते हैं, बड़ों

की इच्छानुसार कार्य कर सुयश प्राप्त करते हैं। हे कुमार! यदि आप चलने में विलम्ब करेंगे तो राजा स्वयं आपसे मिलने आयेंगे। यह आप जैसे आज्ञाकारी पुत्र के लिए योग्य नहीं। इसलिए अतिशीघ्र प्रस्थान करिये। आप जैसे विनयशील पुरुष का यही कर्तव्य है।

मन्त्री के युक्तियुक्त नम्र सरल वचनों से कुमार का हृदय परिवर्तित हो गया। समस्त क्षोभ धुल गया। वह पूर्ववत् ही गुरुवत्सल हो गया। गुणज्ञ पुरुष कषाय बाँधकर नहीं रखते। सत्पुरुष-अपराधी अपराध स्वीकार कर ले, इतना ही उनके सन्तोष को पर्याप्त होता है। अस्तु कुमार ने चारों पत्नियों सहित खाट पर आरूढ़ हो उज्जयिनी की ओर प्रस्थान किया तथा समस्त सेना भी भू-मार्ग से चली। महीपाल आकाशमार्ग से जाता हुआ देव जैसा शोभित हो रहा था।

उधर राजा नृसिंह ने सम्पूर्ण नगरी की अद्भुत शोभा करायी। स्वयं परिजन-पुरजन सहित बड़े साज-बाज के साथ कुमार की अगवानी के लिए चला। आकाशमार्ग से आते ही कुमार को देखकर राजा आश्चर्यान्वित हुआ। अहो! कुमार की यह अद्वितीय कला सामर्थ्य विचित्र है! कुमार ने राजा को आते हुए देखा कि तत्काल आकाश से उतरा और पिता के चरणों में विनयपूर्वक नमस्कार किया। राजा ने भी अति स्नेह से गले लगाया। बड़े आदर और उत्साह से नगर में प्रवेश कराया। महारमणीक सर्व-सुख सामग्री से सुसज्जित सतखण्ड महल रहने के लिए दिया। महीपाल अपनी चारों महारानियों से युक्त नाना प्रकार के अद्भुत

सुखोपभोग भोगने लगा। महीपाल पूर्ववत् ही राजा को नाना विनोद से प्रसन्न करने लगा, परस्पर वियोग सहने में असमर्थ हुए धीरे-धीरे समस्त प्रजा कुमार के गुणों पर विमुग्ध हो गई। प्रजा-पालक प्रजावत्सल देखकर राजा ने सम्पूर्ण राजकार्य महीपाल को अर्पित कर दिया। सारा राजकार्य महीपाल ही सम्भालने लगा। इन्द्र समान चारों रानियों के साथ सुखोपभोग करता हुआ भी प्रजा का बराबर ध्यान रखता था और राजा को भी अपने नये-नये विनोदों के द्वारा रंजायमान करता था। लीला मात्र में बड़े-बड़े शत्रु राजाओं को जीत लिया था। कुमार के पराक्रम से भयभीत होकर कितने ही राजा शरणागत हो गये। निष्कंटक राज्य हो गया।

शत्रुविहीन राज्य हो जाने से प्रजा अमन चैन से धर्मध्यान में लीन हुई। सर्व प्रजा आनन्द से रहने लगी। स्वयं कुमार राजा को नाना क्रीड़ाओं में मुग्ध करने लगा। घुड़सवारी से, कभी वनक्रीड़ा से, कभी उपवन से पुष्प चुनने से, कभी पण्डित गोष्ठी से, कभी कथा उपाख्यानों से, कभी मनोहर द्यूतादि क्रीड़ाओं से रंजित करने लगा। राज्य में सर्व प्रकार से सुख-शान्ति रहने लगी। जिनभक्त महीपाल पर्वादिकाल में विशेष-विशेष पूजा अनुष्ठानों से धर्म प्रभावनादि करते थे, धर्मध्यान सेवन से रत होते थे। सर्वप्रजा धर्म परायण थी। इस प्रकार निर्विरोध रूप से चारों पुरुषार्थ सेवन करने तल्लीन थे।

★ ★ ★

राज सभा सजी हुई थी। राजा, कुमार सहित सिंहासन पर

आसीन था। सहसा आकाश से जय-जय शब्द एवं दुंदुभिनाद सुनाई पड़ा। सहसा आकाश की ओर देखा दल-बल के साथ देव-देवेन्द्रगण विमानारूढ़ चले जा रहे हैं। तत्क्षण आश्चर्यान्वित हो राजा ने द्वारपाल को बुलाकर दुन्दुभिनाद का कारण पूछा। तब भृत्य हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला—नराधीश! हे स्वामिन्! आपके उद्यान में स्थित सुधर्मास्वामी मुनिराज को महाकेवल लब्धि प्राप्त हुई है। अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। वहाँ दुन्दुभिनाद हो रहा है और देवों के समूह जिन-वन्दनार्थ जा रहे हैं। इस प्रकार कर्णप्रिय कल्याणकारी वचन सुनकर राजा ने राजचिह्नों के अतिरिक्त सम्पूर्ण वस्त्राभूषण द्वारपाल को इनाम में दिये।

उज्जयिनी नगरी में आनन्दभेरी दिलायी गयी। राजा भी महीपाल सहित जिन-वन्दना के लिए चला। नाना प्रकार के सुस्वादु सुगन्धित फलों के थाल एवं सुगन्धित पुष्प नैवेद्य अनेक मधुर नैवेद्य इत्यादि अष्ट द्रव्य सजाकर अनेकों स्तुति करते वाद्य बजाते हुए लोग जिन-दर्शन को चलने लगे। गन्धकुटी के दिखते ही राजादि अपने-अपने वाहनों से उतर पैदल चल कर हाथों में पूजन द्रव्य लिए सभा मण्डप में पहुँचे। जय जयकार करते हुए गन्धकुटी में प्रवेश किया, जहाँ पर श्री जिनेन्द्र भगवान सहस्त्रदल सुवर्ण कमलयुक्त रत्नजड़ित सिंहासन पर चार अंगुल अधर विराजमान थे। राजा नृसिंह, महीपाल एवं अन्य भव्यजनों ने सिर नवा हाथ जोड़कर पृथ्वी पर झुककर साष्टांग नमस्कार किया। स्तुति कर मनुष्यों के विभाग में एकाग्रचित्त बैठ गये। सर्व सभा के शान्तचित्त हो जाने पर प्रभु का धर्मोपदेश प्रारम्भ हुआ।

धर्म जीवन का प्राण है। उभय लोक में धर्म ही सुखदाता है। श्रावक धर्म और यति धर्म के भेद से धर्म के दो भेद हैं। उत्तम क्षमादि के भेद से दश प्रकार धर्म हैं। रत्नत्रय की अपेक्षा तीन भेदवाला है। आत्मस्वभाव की अपेक्षा एक भेदरूप है। धर्म की मूल दया है। प्राणी मात्र का रक्षण करना, कषायभाव नहीं करना श्रेष्ठ धर्म है।

'उच्च कुल', 'शीलवती नारी', 'निरोग शरीर', 'प्रबल पराक्रम', 'पवित्र आचरण', 'आज्ञाकारी पुत्र', 'हितदर्शन मित्र', 'सुख दुःख में समान भाई', 'सज्जन कुटुम्ब वर्ग' आदि सब धर्म के प्रभाव से प्राप्त होते हैं।

श्रावकधर्म का मुख्य अंग श्री जिन पूजा और सुपात्र दान है। अष्टद्रव्यों से भगवान अर्हंत् प्रभु की पूजा करना चाहिए। प्रत्येक श्रावक का कर्तव्य है कि स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन, शुद्ध जल (दो पट वस्त्र से छानकर) कुएं से स्वयं भर कर लावें। अखण्ड तन्दुल (चावल) आदि अष्ट द्रव्यों से तथा अखण्ड पुष्प चढ़ावें-सुन्दर सुगन्धित पुष्प भगवान के चरणों में चढ़ाने चाहिए। आठों द्रव्य को मिलाकर एक साथ अर्घावतारण कर पूजा करे। जिन पूजन के सन्दर्भ में आचार्य पद्मनन्दिदेव ने पद्मनन्दि पंचविंशति में कहा है —

जातिर्जरा-मरणमित्यनल-त्रयस्य,
जीवाश्रितस्य बहुतापकृतो यथावत्।
विध्यापनाय जिनपाद-युगाग्रभूमौ,
धारात्रयं प्रवर-वारिकृतं क्षिपामि॥1॥

अर्थ—जीवों के आश्रित अर्थात् जीवों में होनेवाले तथा अत्यन्त सन्ताप को देनेवाले जन्म, जरा और मरण—ये तीन प्रकार की अग्नियाँ हैं। इन तीनों प्रकार की अग्नियों को बुझाने के लिये **श्री जिनेन्द्र भगवान** के दोनों चरणों के अग्र भाग की भूमि में **उत्तम जल** से निर्मित तीन धाराओं को मैं क्षेपण करता हूँ।

यद्वद्वचो जिनपतेर्भव-तापहारि,
नाऽहं सुशीतलमपीह भवामि तद्वत्।
कर्पूर-चन्दनमितीव मयाऽर्पितं सत्,
त्वत्पाद-पंकज-समाश्रयणं करोति॥2॥

अर्थ—जिस प्रकार भगवान के वचन, समस्त संसारताप को हरण करनेवाले हैं, उसी प्रकार अत्यन्त **शीतल चन्दन,** संसार के सन्ताप को हरण करनेवाला नहीं है; इसलिए हे भगवान! आपको चढ़ाया हुआ यह **कपूर-मिश्रित चन्दन,** आपके चरणों का आश्रय करता है।

राजत्यसौ शुचितराक्ष-तपुञ्जराजिः,
दत्ताऽधिकृत्य जिनमक्षतमक्ष-धूर्तैः।
वीरस्य नेतर-जनस्य तु वीर-पट्टो,
बद्धः शिरस्यतितरां श्रियमातनोति॥3॥

अर्थ—इन्द्रियरूपी धूर्त से जो नष्ट नहीं किये गये हैं—ऐसे जिनेन्द्र भगवान को समर्पित की गई अत्यन्त निर्मल **अक्षत-पुजों की पंक्ति,** अत्यन्त शोभायमान होती है, सो ठीक ही है क्योंकि जो मनुष्य अत्यन्त शूरवीर हैं, उनके मस्तक पर बँधा हुआ वीरपट्ट

ही शोभा को प्राप्त होता है, किन्तु कायर व्यक्ति के मस्तक पर बँधा हुआ वीरपट्ट शोभा को प्राप्त नहीं होता।

साक्षादपुष्पशर एष जिनस्तदेनं,
संपूजयामि शुचि-पुष्पशरैर्मनोज्ञैः।
नाऽन्यं तदाश्रयतया किल यन्न यत्र,
तत्तत्र रम्यमधिकां कुरुते च लक्ष्मीम्॥4॥

अर्थ—श्री जिनेन्द्र भगवान, साक्षात् अपुष्पशर (कामबाण से रहित) अर्थात् मदन से रहित हैं, इसलिए ऐसे श्री जिनेन्द्र भगवान की अत्यन्त मनोहर **पुष्पहारों** के माध्यम से मैं पूजन करता हूँ; किन्तु भगवान से अन्य मदन (काम) सहित जीवों की इन **पुष्पहारों द्वारा पूजा** नहीं करता क्योंकि जो चीज जहाँ पर नहीं होती है, वही वहाँ पर मनोहर समझी जाती है तथा वही वहाँ अधिक शोभा को प्राप्त होती है; किन्तु जो चीज़ जहाँ पर होती है, वह वहाँ पर मनोहर नहीं लगती और न शोभा को ही धारण करती है।

देवोऽयमिन्द्रिय-बल-प्रलयं करोति,
नैवेद्यमिन्द्रिय-बलप्रद-खाद्यमेतत्।
चित्रं तथापि पुरतः स्थितमर्हतोऽस्य,
शोभां बिभर्ति जगतो नयनोत्सवाय॥5॥

अर्थ—श्री जिनेन्द्रदेव ने समस्त इन्द्रियों के बल को नष्ट किया है और यह **नैवेद्य** इन्द्रियों के बल को बढ़ानेवाला है। खानेयोग्य होने पर भी अर्हन्त भगवान के सामने चढ़ाया हुआ, वह **नैवेद्य,** समस्त जगत् के नेत्रों के उत्सव हेतु शोभा को धारण

करता है, यह आश्चर्य है।

आरार्तिकं तरल-वह्निशिखं विभाति,
स्वच्छे जिनस्य वपुषि प्रतिबिम्बितं सत्।
ध्यानाऽनलो मृगयमाण इवाऽवशिष्टं,
दग्धुं परिभ्रमति कर्मचयं प्रचण्डः ॥6॥

अर्थ—चंचल अग्निशिखा से प्रज्ज्वलित तथा जिनेन्द्रदेव के स्वच्छ शरीर में प्रतिबिम्बित हुई, यह **आरती (दीप)** ऐसी प्रतीत होती है, मानो प्रचण्ड ध्यानरूपी अग्नि, शेष कर्मों को भस्म करने के लिए जहाँ-तहाँ ढूँढ़ती हुई भ्रमण कर रही हो।

कस्तूरिका-रसमयीरिव पत्र-वल्लीः,
कुर्वन् मुखेषु चलनैरिव दिग्वधूनाम्।
हर्षादिव प्रभु-जिनाश्रयणेन वात-,
प्रेंखद्वपुर्नटति पश्यत धूप-धूमम् ॥7॥

अर्थ—दस दिशारूपी स्त्रियों के मुख में कस्तूरी के रस से बनाई हुई पत्र-रचना के समान **यह धुआँ,** पत्र-रचना को करता हुआ प्रभु श्री जिनेन्द्र भगवान का आश्रय करने से तथा पवन से कम्पित शरीर के साथ अत्यन्त हर्ष से नृत्य कर रहा है—ऐसा लगता है।

उच्चैः फलाय परमामृत-संज्ञकाय,
नाना-फलैर्जिनपतिं परिपूजयामि।
तद्भक्तिरेव सकलानि फलानि दत्ते,
मोहेन तत्तदपि याचत एव लोकः ॥8॥

अर्थ—सबसे ऊँचे तथा उत्तम अमृत की संज्ञा से युक्त **फल अर्थात् मोक्षफल** के लिए मैं श्री जिनेन्द्र भगवान की भाँति-भाँति के अनेक प्रकार के **फलों से पूजा** करता हूँ। यद्यपि श्री जिनेन्द्र भगवान की भक्ति ही **समस्त फलों को** देनेवाली है तो भी यह लोक, मोह से **अन्य फल की याचना** करता ही है।

पूजा-विधिं विधिवदत्र विधाय देवे,
स्तोत्रं च सम्मद-रसाश्रित-चित्त-वृत्तिः।
पुष्पाञ्जलिं विमल-केवल-लोचनाय,
यच्छामि सर्वजन-शान्तिकराय तस्मै ॥9॥

अर्थ—हे निर्मल केवलज्ञानस्वरूपी नेत्र को धारण करनेवाले और **समस्त जीवों को शान्ति देनेवाले जिनेन्द्रदेव!** श्रेष्ठ हर्षरस के आश्रित चित्तवृत्ति से युक्त मैं (पूजक) शास्त्रानुसार आपकी भली-भाँति पूजा करके तथा स्तोत्र पढ़कर आपको **पुष्पाञ्जलि** समर्पित करता हूँ।

श्री-पद्मनन्दित-गुणौघ न कार्यमस्ति,
पूजादिना यदपि ते कृतकृत्यतायाः।
स्वश्रेयसे तदपि तत्कुरुते जनोऽर्हन्,
कार्या कृषिः फलकृते न तु भूपकृत्यै ॥10॥

अर्थ—श्री पद्मनन्दि आचार्य द्वारा गुनगान किये हुए गुणों के समूह से युक्त हे अर्हन्! हे वीतरागदेव! आप कृतकृत्य हैं तथा आपके कृतकृत्यपने के कारण आपको पूजा-प्रशंसा आदि से कुछ भी कार्य नहीं है; तथापि यह लोक, **अपने कल्याण के लिए ही आपकी पूजा** करता है क्योंकि कृषक अपने कल्याण के

लिए ही खेती करता है, राजा के लिए नहीं।

श्रावक धर्म में पूजा के समान सत्पात्र दान भी मुख्य बताया है। दान चार प्रकार का है—1. आहारदान, 2. ज्ञानदान, 3. औषधदान, 4. अभयदान। हे भव्य जन'! प्रथम दान का फल सुनो—

ज्ञानवान ज्ञानदानेन निर्भयोऽभय दानतः।
अन्न दानात्सुखी नित्यं, औषधेन निरोगिता॥

अर्थात् ज्ञान दान देने से निर्मल सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है; अभयदान से सप्त प्रकार के भयों से रहित जीव शुद्ध सम्यग्दृष्टि होता है। अन्नदान करने से आहारदान से सतत् सुखी होता है। अर्थात् पवित्राचरणी होता है और औषधदान देनेवाला सर्वथा रोग रहित स्वस्थ्य शरीर प्राप्त करता है। जिससे नाना प्रकार के व्रतोपवास त्याग तप करने में समर्थ होता है।

दान से सर्व प्राणी वश में होते हैं। वैर का नाश होता है। शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। सर्व कष्ट स्वयमेव टल जाते हैं।

सुदान से भोग यश और सांसारिक सुख प्राप्त होता है, शत्रुओं पर विजय, व्याधियों का नाश, विद्या की प्राप्ति और युवती जनसमागम सुदान से अनायास मिलते हैं।

सुदानात् प्रापयेत भोगा सुदानात् प्राप्येत यशः।
सुदानाज्जायते कीर्ति सुदानाद् प्रापयेत सुखम्॥
दानेन शत्रुर्जैतव्यः व्याधिर्दानेन नश्यति।
दानेन लभ्यते विद्या दानेन युवती जनः॥

दान का महान फल है। पूर्व भव में दिये हुए दान के प्रभाव

से वृषभदेव तीर्थंकर हुए, प्रथम चक्रवर्ती भरत भी दान के प्रभाव से हुए, कामदेव बाहुबलीस्वामी, सेनापति जयकुमार ये आहारदान के फलस्वरूप ही हुए। नाना प्रकार के भोगों का समागम दान ही से मिलता है।

धर्मी श्रावक को दान की प्रेरणा देते हुए कहा गया है कि*—

भाई! लक्ष्मी तो क्षणभंगुर है; तू दान द्वारा लक्ष्मी आदि का प्रेम हटाकर धर्म का प्रेम बढ़ा। जिसे धर्म का उल्लास होता है, उसे धर्म प्रसंग में तन-मन-धन खर्च करने का उल्लास आये बिना नहीं रहता। धर्म की शोभा किस प्रकार बढ़े, धर्मात्मा किस प्रकार आगे बढ़े और साधर्मियों को कोई प्रतिकूलता हो तो वह कैसे दूर हो—ऐसा प्रसंग विचारकर श्रावक उसमें उत्साह से वर्तता है। ऐसे धर्म के प्रेमी श्रावक को दान के भाव होते हैं।

सम्यग्दर्शनपूर्वक देशव्रती श्रावक को अष्ट मूलगुण और बारह अणुव्रत होते हैं—यह बतलाया है। अब कहते हैं कि— गृहस्थ को यद्यपि जिनपूजा आदि अनेक कार्य होते हैं तो भी उनमें सत्पात्रदान सबसे मुख्य है—

देवाराधनपूजनादिबहुषु व्यापारकार्येषु सत्
पुण्योपार्जनहेतुषु प्रतिदिनं संजायमानेष्वपि।
संसारार्णवतारणे प्रवहणं सत्पात्रमुद्दिश्य यत्
तद्देशव्रतधारिणो धनवतो दानं प्रकृष्टो गुणः ॥७॥

अर्थ : यद्यपि धनवान और धर्मात्मा श्रावकों के श्रेष्ठपुण्य के संचय करनेवाले जिनेन्द्रदेव की सेवा तथा पूजन प्रतिष्ठा

*प्रस्तुत ईटैलिक अंश श्रावकधर्मप्रकाश से समायोजित किया गया है।

आदि प्रतिदिन अनेक उत्तम कार्य होते रहते हैं, तथापि उन सब उत्तम कार्यों में संसार-समुद्र से पार करने में जहाज के समान श्रेष्ठ मुनि आदि पात्रों को जो दान देता है, वह उन धनवान धर्मात्मा-श्रावकों का सबसे प्रधान गुण (कर्तव्य) है; इसलिए भव्य श्रावकों को सदा उत्तम आदि पात्रों में दान देना चाहिए ।।७ ।।

पुण्योपार्जन कारक जिन-पूजन अरु अर्चनादि बहु कार्य।
धर्मात्मा धनवान श्रावकों के घर प्रतिदिन हों ये कार्य ।।
किन्तु दान सत्पात्रों को है भव समुद्र से तारक पोत।
अतः देशव्रतधारी धनिकों का है यह अति उत्तम गुण ।।७ ।।

श्रावक को सत् पुण्योपार्जन के कारणरूप जिनदेव का आराधन-पूजन आदि अनेक कार्य हमेशा होते हैं; उसमें भी धनवान श्रावक का तो संसार-समुद्र को पार करने के लिए नौका समान ऐसा सत्पात्रदान उत्तम गुण है; अर्थात् श्रावक के सब कार्यों में दान मुख्य कार्य है।

धर्मी जीव प्रतिदिन धर्म की प्रभावना, ज्ञान का प्रचार, भगवान की पूजा-भक्ति आदि कार्यों में अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग किया करता है, उनमें धर्मात्मा को मुनि आदि के प्रति भक्तिपूर्वक दान देना मुख्य है। आहारदान, औषधदान, ज्ञानदान और अभयदान—ये चार प्रकार के दान जिनागम में बताये गये हैं।

धनवान अर्थात् जिसने अभी परिग्रह नहीं छोड़ा, ऐसे श्रावक का मुख्य कार्य सत्पात्रदान है। सम्यग्दर्शनपूर्वक जहाँ ऐसे दान-पूजादि का शुभराग आता है, वहाँ अन्तर्दृष्टि में उस राग का भी निषेध वर्तता है, अर्थात् उस धर्मी को उस राग से 'सत् पुण्य'

बँधता है। अज्ञानी को 'सत् पुण्य' नहीं होता क्योंकि उसे तो पुण्य की रुचि है, राग के आदर की बुद्धि से पुण्य के साथ मिथ्यात्वरूपी बड़ा पापकर्म उसे बँधता है।

यहाँ दान की मुख्यता कही है, उससे अन्य का निषेध न समझना। जिनपूजा आदि को भी सत् पुण्य का हेतु कहा है, वह भी श्रावक को प्रतिदिन होता है। कोई उसका निषेध करे तो उसे श्रावकपने की या धर्म की खबर नहीं है।

जिनपूजा को कोई परमार्थ से धर्म ही मान ले तो भूल है और जिनपूजा का कोई निषेध करे तो वह भी भूल है। जिन-प्रतिमा जैनधर्म में अनादि की वस्तु है, परन्तु वह जिन प्रतिमा वीतराग हो—'जिनप्रतिमा जिनसारखी।' किसी ने इस जिन-प्रतिमा पर चन्दन-पुष्प-आभरण-मुकुट-वस्त्र आदि चढ़ाकर उसका स्वरूप विकृत कर दिया और किसी ने जिन-प्रतिमा के दर्शन-पूजन में पाप बतलाकर उसका निषेध किया हो—यह दोनों ही भूल हैं। इस सम्बन्धी एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाता है—दो मित्र थे; एक मित्र के पिता ने दूसरे के पिता को १०० (एक सौ) रुपये उधार दिये और बही में लिख लिये। दूसरे का पिता मर गया। कितने ही वर्षों के बाद पुराने बहीखाते देखने पर पहले मित्र को खबर लगी कि मेरे पिता ने मित्र के पिता को एक सौ रुपया दिये थे, परन्तु उसे तो बहुत वर्ष बीत गये। ऐसा समझकर उसने १०० के आगे दो बिन्दु लगाकर १०,००० (दस हजार) बना दिये; और पश्चात् मित्र को कहा कि तुम्हारे पिता ने मेरे पिता से दस हजार रुपये लिये थे, इसलिए लौटाओ। तब मित्र ने कहा कि मैं मेरे पुराने बही-चोपड़े देखकर फिर

कहूँगा। घर जाकर पिता की बहियाँ देखी तो उसमें दस हजार के बदले सौ रुपये निकले। इस पर उसने विचार किया कि यदि रुपये स्वीकार करता हूँ तो मुझे दस हजार रुपये देना पड़ेगा। इसलिए उसकी नीयत खराब हो गयी और उसने तो मूल से ही उड़ा दी कि मेरी बहियों में कुछ नहीं निकला। इसमें सौ रुपये की रकम तो सच्ची थी, परन्तु एक ने लोभवश उसमें दो बिन्दु बढ़ा दिये और दूसरे ने वह रकम सम्पूर्ण उड़ा दी। उसी प्रकार अनादि जिनमार्ग में जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर, उनकी पूजा आदि यथार्थ है; परन्तु एक ने दो बिन्दुओं की तरह उसके ऊपर वस्त्र-आभरण आदि परिग्रह बढ़ाकर विकृति कर डाली और दूसरे ने तो शास्त्र में मूर्ति ही नहीं है—ऐसा गलत अर्थ करके उसका निषेध किया है और इन दो के अतिरिक्त, वीतरागी जिनप्रतिमा को स्वीकार करके भी उस और के शुभराग को जो मोक्ष के साधनरूप धर्म बतावे, उसने भी धर्म के सच्चे स्वरूप को नहीं समझा है। भाई! जिनप्रतिमा है, उसके दर्शन -पूजन का भाव होता है, परन्तु उसकी सीमा कितनी? कि शुभराग जितनी।—इससे आगे बढ़कर इसे यदि तू परमार्थ धर्म मान ले तो वह तेरी भूल है।

एक शुभ विकल्प उठे, वह भी वास्तव में ज्ञान का कार्य नहीं है। मैं तो सर्वज्ञस्वभावी हूँ, जैसे सर्वज्ञ में विकल्प नहीं, वैसे ही मेरे ज्ञान में भी रागरूपी विकल्प नहीं हैं। 'ये विकल्प उठते हैं न?'—तो कहते हैं कि वह कर्म का का कार्य है, मेरा नहीं। मैं तो ज्ञान हूँ, ज्ञान का कार्य राग कैसे हो?—इस प्रकार ज्ञानी को राग से पृथक् त्रैकालिक स्वभाव के भानपूर्वक उसे

टालने का उद्यम होता है। जिसने राग से पृथक् अपने स्वरूप को नहीं जाना और राग को अपना स्वरूप माना है, वह राग को कहाँ से टाल सकेगा ? ऐसे भेदज्ञान के बिना सामायिक भी सच्ची नहीं होती। सामायिक तो दो घड़ी अन्तर में निर्विकल्प आनन्द के अनुभव का एक अभ्यास है; और दिन-रात चौबीस घण्टे आनन्द के अनुभव की जाँच, उसका नाम प्रौषध है; और शरीर छूटने के प्रसंग में अन्तर में एकाग्रता का विशेष अभ्यास का नाम संल्लेखना अथवा संथारा है। परन्तु जिसे राग से भिन्न आत्मस्वभाव का अनुभव ही नहीं, उसे कैसी सामायिक ? कैसा प्रौषध ? और कैसा संथारा ? भाई! यह वीतरागमार्ग जगत से न्यारा है।

यहाँ अभी जिसने सम्यग्दर्शनसहित व्रत अंगीकार किये हैं, ऐसे धर्मी श्रावक को जिन-पूजा आदि के उपरान्त दान के भाव होते हैं, उसकी चर्चा चल रही है। तीव्र लोभरूपी कुँए की खोल में फँसे हुए जीवों को उसमें से बाहर निकलने के लिए श्री पद्मनन्दीस्वामी ने करुणा करके दान का विशेष उपदेश दिया है। दान अधिकार की छयालीसवीं गाथा में कौवे का दृष्टान्त देकर कहा है कि—जो लोभी पुरुष दान नहीं देता और लक्ष्मी के मोहरूपी बन्धन से बँधा हुआ है, उसका जीवन व्यर्थ है, उसकी अपेक्षा तो वह कौवा श्रेष्ठ है जो अपने को मिली हुई जली खुरचन को काँव-काँव करके दूसरे कौवों को बुलाकर खाता है। जिस समय में तेरे गुण जले अर्थात् उनमें विकृति हुई, उस समय में राग से पुण्य बँधा, उस पुण्य से कुछ लक्ष्मी मिली और अब तू सत्पात्र के दान में उसे नहीं खर्चे और मात्र पापहेतु

में ही खर्चे तो तुझे सिर्फ पाप का ही बन्धन होता है; तेरी यह लक्ष्मी तुझे बंधन का ही कारण है। सत्पात्र दानरहित जीवन निष्फल है क्योंकि जिसमें धर्म का और धर्मात्मा का प्रेम नहीं, उसमें आत्मा का क्या लाभ?

भाई! यह दान का उपदेश सन्त तेरे हित के लिये देते हैं। सन्त तो वीतरागी हैं और उन्हें तेरे धन की वांछा नहीं है, वे तो परिग्रहरहित दिगम्बर सन्त वन-जंगल में बसनेवाले और चैतन्य के आनन्द में झूलनेवाले हैं। यह जीवन, यौवन और धन सब स्वप्न समान क्षणभंगुर हैं—तो भी जो जीव सत्पात्रदान आदि में उसका उपयोग नहीं करते और लोभरूपी कुएँ की खोल में भरे हुए हैं, उन पर करुणा करके उद्धार के लिए सन्तों ने यह उपदेश दिया है। अन्तर में सम्यग्दृष्टिपूर्वक अन्य धर्मात्माओं के प्रति दान-बहुमान का भाव आवे, उसमें स्वयं की धर्मभावना पुष्ट होती है; इसलिए ऐसा कहा कि दान श्रावक को भवसमुद्र से तिरने के लिए जहाज के समान है। जिसे निज-धर्म का प्रेम है, उसे अन्य धर्मात्मा के प्रति प्रमोद प्रेम और बहुमान आता है। धर्म, धर्मी जीव के आधार से है, इसलिए जिसे धर्मी जीवों के प्रति प्रेम नहीं; जो मनुष्य साधर्मी-सज्जनों के प्रति शक्ति अनुसार वात्सल्य नहीं करता, उसकी आत्मा प्रबल पाप से ढँकी हुई है और धर्म से वह विमुख है अर्थात् वह धर्म का अभिलाषी नहीं है। भव्य जीवों को साधर्मी-सज्जनों के साथ अवश्यक प्रीति करनी चाहिए—ऐसा उपासक-संस्कार की गाथा ३६ में पद्मनन्दीस्वामी ने कहा है, लक्ष्मी आदि का प्रेम घटाकर धर्म का प्रेम बढ़ा। स्वयं को धर्म का उल्लास आवे तो धर्म प्रसंग में

तन-मन-धन खर्च करने का भाव उछले बिना नहीं रहे; धर्मात्मा को देखते ही उसे प्रेम उमड़ता है। वह जगत को दिखाने के लिए दानादि नहीं करता, परन्तु स्वयं को अन्तर में धर्म का ऐसा प्रेम सहज ही उल्लसित होता है।

धर्मात्मा की दृष्टि में तो आत्मा के आनन्दस्वभाव की ही मुख्यता है, परन्तु उसको शुभ कार्यों में दान की मुख्यता है। दृष्टि में आनन्द की मुख्यता रखते हुए भूमिका अनुसार दानादि के शुभ भावों में वह प्रवर्तता है। वह किसी को दिखाने के लिए नहीं करता परन्तु अन्तर में धर्म के प्रति उसको सहजरूप से उल्लास आता है।

लोग स्थूलदृष्टि से धर्मी को मात्र शुभभाव करता हुए देखते हैं, परन्तु अन्दर की गहराई में धर्मी की मूलभूत दृष्टि वर्तती है— जो स्वभाव का अवलम्बन कभी नहीं छोड़ती और राग को कभी आत्मरूप नहीं करती—उसको दुनिया नहीं देखती, परन्तु धर्म का मूल तो वह दृष्टि है। 'धर्म का मूल गहरा है।' गहरा ऐसा जो अन्तरंगस्वभावधर्म का वटवृक्ष है, उस ध्रुव पर दृष्टि डालकर एकाग्रता का सींचन करते-करते इस वटवृक्ष में से केवलज्ञान प्रगट होगा। अज्ञानी के शुभभाव अर्थात् परलक्षी शास्त्रपठन, ये तो भाद्रपद महीने के भिण्डी के पौधे जैसे हैं, वे लम्बे काल तक टिकेंगे नहीं। धर्मात्मा को ध्रुवस्वभाव की दृष्टि से धर्म का विकास होता है, बीच में शुभराग और पुण्य आता है, उसको तो वह हेय जानता है;—जो विकार है, उसकी महिमा क्यों? और उससे आत्मा की महत्ता क्या? अज्ञानी तो राग द्वारा अपनी महत्ता मानकर, स्वभाव की महत्ता को भूल जाता है और संसार

में भटकता है। ज्ञानी को सत्स्वभाव की दृष्टिपूर्वक जो पुण्यबंध होता है, उसे सत् पुण्य कहते हैं; अज्ञानी के पुण्य को सत् पुण्य नहीं कहते।

जिसे राग-पुण्य की और उसके फल की प्रीति है, वह तो अभी संयोग ग्रहण करने की भावनावाला है, अर्थात् उसे दान की भावना सच्ची नहीं होती। स्वयं तृष्णा घटवे तो दान का भाव कहा जाता है, परन्तु जो अभी किसी को ग्रहण करने में तत्पर है और जिसे संयोग की भावना है, वह राग घटाकर दान देने में प्रसन्न कहाँ से होगा? मेरा आत्मा ज्ञानस्वभावी, स्वयं से पूर्ण है, पर का ग्रहण अथवा त्याग मेरे में है ही नहीं—ऐसे असंगस्वभाव की दृष्टिवाला जीव परसंयोगहेतु माथापच्ची न करे; इसे संयोग की भावना कितनी टल गयी है? परन्तु इसका माप अन्तर्दृष्टि बिना पहिचाना नहीं जा सकता।

भाई! तुझे पुण्योदय से लक्ष्मी मिली और जैनधर्म के सच्चे देव-गुरु महारत्न तुझे महाभाग्य से मिले, अब यदि तू धर्म-प्रसंग में तेरी लक्ष्मी का उपयोग करने के बदले स्त्री-पुत्र तथा विषय-कषाय के पापभाव में ही धन का उपयोग करता है तो हाथ में आया हुआ रत्न समुद्र में फेंक देने जैसा तेरा कार्य है। जिसे धर्म का प्रेम होता है, वह तो धर्म की वृद्धि किस प्रकार हो, धर्मात्मा कैसे आगे बढ़े, साधर्मियों को कोई भी प्रतिकूलता हो तो वह कैसे दूर हो—ऐसे प्रसंग विचार-विचारकर उनके लिए उत्साह से धन खर्चता है। धर्मी जीव बारम्बार जिनेन्द्र पूजन का महोत्सव करता है। पुत्र के लग्न में कितने उत्साह से धन खर्च करता है? उधार करके भी खर्चता है, तो धर्म की

लगन में देव-गुरु की प्रभावना के लिए और साधर्मी के प्रेम के लिए उससे भी विशेष उल्लासपूर्वक प्रवर्तना योग्य है। एक बार शुभभाव में कुछ खर्च कर दिया, इसलिए बस है—ऐसा नहीं, परन्तु बारम्बार शुभकार्य से उल्लास से वर्ते।

दान अपनी शक्ति अनुसार होता है, लाख-करोड़ की सम्पत्ति में से सौ रुपया खर्च हो, वह कोई शक्ति-अनुसार नहीं कहा जा सकता। उत्कृष्टरूप से चौथा भाग, मध्यमरूप से छठवाँ भाग, तथा कम से कम दसवाँ भाग खर्च करे, उसको शक्ति-अनुसार दान का गया है।

देखो! यह किसी प्रकार कोई पर के लिए करने की बात नहीं है, परन्तु आत्मा के भानसहित परिग्रह की ममता घटाने की बात है। नये-नये महोत्सव के प्रसंग तैयार करके श्रावक अपने धर्म का उत्साह बढ़ाता जाता है और पापभाव घटाता जाता है। उन प्रसंगों में मुनिराज को अथवा धर्मात्मा को अपने आँगन में बैठाकर भक्ति से आहारदान करना, उसका प्रधान कर्तव्य कहा गया है क्योंकि उसमें धर्म के स्मरण का और धर्म-भावना की पुष्टि का सीधा निमित्त है। मुनिराज इत्यादि धर्मात्मा को देखते ही स्वयं के रत्नत्रयधर्म की भावना तीव्र हो जाती है।

कोई कहे कि हमारे पास बहुत सम्पत्ति नहीं है, तो कहते हैं कि भाई! कम पूँजी हो तो कर्म ही खर्च कर। तुझे तेरे भोग-विलास के लिए लक्ष्मी मिलती है और धर्म प्रभावना का प्रसंग आता है, वहाँ तू हाथ खींच लेता है, तो तेरे प्रेम की दिशा धर्म की ओर नहीं परन्तु संसार की ओर है। धर्म के वास्तविक

प्रेमवाला धर्मप्रसंग में नहीं छिपता।

भाई! लक्ष्मी की ममता तो तुझे केवल पापबन्ध का कारण है। स्त्री, पुत्र के लिए या शरीर के लिए तू जो लक्ष्मी खर्च करेगा, वह तो तुझे मात्र पापबन्ध का ही कारण होगी और वीतरागी देव-गुरु-धर्म-शास्त्र-जिनमन्दिर आदि में जो तेरी लक्ष्मी का सदुपयोग करे तो वह पुण्य का कारण होगी और तेरे धर्म के संस्कार भी दृढ़ होंगे। इसलिए संसार के निमित्त और धर्म के निमित्त, इन दोनों का विवेक कर। धर्मात्मा श्रावक को तो सहज ही यह विवेक होता है और उसे सुपात्रदान का भाव होता है। जैसे रिश्तेदार को प्रेम से-आदर से जीमाता है; उसी प्रकार सच्चा सम्बन्ध साधर्मी से है। साधर्मी-धर्मात्माओं को प्रेम से-बहुमान से घर बुलाकर जीमाता है—ऐसे दान के भाव को संसार से तिरने का कारण कहा है, क्योंकि मुनि के या धर्मात्मा के अन्तर के ज्ञानादि की पहचान, वह संसार से तिरने का हेतु होता है। सच्ची पहिचानपूर्वक की यह बात है। सम्यग्दर्शन बिना अकेले दान के शुभपरिणाम से भव का अन्त हो जाए—ऐसा नहीं बनता। यहाँ तो सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावक को दान के भाव होते हैं, इसकी मुख्यता है।

निरतिचार शील पालने अष्ट ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती है। पाप का नाश होता है, लोक में सुकीर्ति व्याप्त होती है। परभव में इन्द्रादिक सम्पदा का लाभ होता है। शील के प्रभाव से सेठ सुदर्शन महाराज यशस्वी हो परमपद को प्राप्त हुए। अनेकों सतियाँ देवों द्वारा पूज्य हुईं। शील संसार में कल्याणकारी है। अभिमान आत्म-पतन का मूल कारण है। लेकिन अहंकार से युक्त क्रोधी

भी नारद शीलव्रत पालने से परम्परा से उच्चगति प्राप्त कर लेता है। राजा नल की रानी शील के प्रभाव से दुःख के भार से रहित हुई, सीता शील के नाम से जगविख्यात हुई।

तप भी आत्मा का शोधक है। तप से कर्म कलंक नष्ट हो जाता है। पाँचों इन्द्रियों और मन वश में हो जाते हैं। तीनों गुप्तियों की सिद्धि, केवलज्ञान की लब्धि तपश्चरण से होती है। तप के प्रभाव से सनत्कुमार चक्रवर्ती अद्‌भुत रूप सम्पदा पाकर मोक्षपद प्राप्त करने में समर्थ हुए। हे भव्यात्माओं! आत्मभान और सम्यक्त्वसहित शुभभावरूपी जल से सींचा गया धर्मरूपी वृक्ष नियम से स्वर्ग-मोक्षरूप फल को प्रदान करता है। भावरहित क्रिया निष्फल है। अतः परिणाम के बहु-सम्पदा फलती है। बाह्य वेश अन्तरंग परिणति भाव बिना सम्यक्, उचित उत्तम फल नहीं दे सकता। नवविधि चौदह रत्न षट् खण्ड का अधिपति चक्रेश्वर भरत भाव विशुद्धि से अन्तर्मुहूर्त में केवली भगवान हो गये और भी अनेकों सिद्ध हुए, वे भाव विशुद्धि से ही हुए हैं। अतः हे भव्यजन हो! भावों को प्रतिक्षण निर्मल कषायरहित विकाररहित बनाओ।

भाव शुद्धि का अंग है दया भाव। चार प्रकार का दान दयादान सहित विशेष फलदायक होता है। जिस प्रकार सर्व गुणों की जड़ विनय है, पाप का मूल लोभ है, सकल अनर्थों की जड़ अभिमान है, उसी प्रकार धर्म की मूल दया है। दया का सम्यक् रूप से पालन सम्यग्दृष्टि ही कर सकता है।

सम्यग्दर्शन सप्त तत्त्व नव पदार्थों के अधिगम से होता है।

जीवादि का परिज्ञान गुरु उपदेश से होता है। विचक्षण वीतरागी पुरुष ही सत्यार्थ वस्तु स्वरूप का उपदेश करने में समर्थ हैं—सम्यग्दर्शन पापरूप अन्धकार का नाशक है। संसार सागर से पार करने का नौका-जहाज समान है। माया बल्लरी के छेदन की तीक्ष्ण दांतला समान है। पुण्यकर्म का पुंज है। सम्यक्त्व के प्रभाव से नरक, तिर्यंच दरिद्रता, विकलभय आदि के दुःख नहीं होते। सम्यग्दृष्टि जीव सदा उच्चकुल, चक्रवर्ती इन्द्र, नागेन्द्र, अहमिन्द्र आदि के श्रेष्ठ पदों को प्राप्त करता है।

सम्यग्दर्शन की स्थिरता के लिए अठारह दोष रहित, छियालिस गुण सहित वीतरागी अरहन्त परमेष्ठी की भक्ति, कैवल्यपद धारी सर्वज्ञ भगवान की वाणी और परमनिर्ग्रन्थ बाह्याभ्यन्तर परिग्रहरहित वीतरागी साधु-गुरुओं की भक्ति कारण है। वह सम्यग्दर्शन श्रावक धर्म की नींव है। सम्यग्दृष्टि श्रावक के बारह अणुव्रत हैं—पाँच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, चार शिक्षा व्रत। इन बारह व्रतों का निर्दोष पालन करनेवाला श्रावक सोलहवें स्वर्ग तक जाने का अधिकारी है। सम्यग्दर्शनसहित दिगम्बर मुनियों के पाँच महाव्रत हैं। जो पुरुष महादुर्धर महाव्रत पालने में समर्थ नहीं है। वे श्रावक अणुव्रत पालन कर गृहस्थ धर्म की सिद्धि करते हैं। यतिधर्म पालन कर शीघ्र मोक्ष सुख पाते हैं और श्रावक परम्परा से उस निर्वाण की प्राप्ति करते हैं। यह महाव्रत रूप धर्म अति कठिन है।

इस प्रकार केवली भगवान ने धर्मोपदेश देकर भव्य प्राणियों का अनिच्छक उपकार किया। प्रभु का उपदेश सुन महीपाल

कुमार ने राजा सहित श्रावक धर्म स्वीकार किया। निर्मल गुरु उपदेश भव्यों के हृदय को स्पर्श कर उन्हें कल्याण मार्ग पर शीघ्र ला देता है।

तत्पश्चात् महीपाल ने अपने और रानियों के पूर्व भव पूछे तदनुसार श्री प्रभु कहने लगे—'तुम पूर्व भव में धन्य नाम के वैश्य थे। तुम्हारी दो पत्नियाँ थीं, तुम्हारा भाई मदन था, उसके भी दो पत्नियाँ थीं। एक समय तुम्हारे गाँव में दिगम्बर साधु आये। तुम मिथ्यात्व से ग्रस्त थे। शुभोदय से मुनिराज के दर्शनार्थ गये और श्री गुरु का उपदेश सुनने लगे।' वे कह रहे थे कि — हे भव्य आत्माओ! मनुष्य पर्याय, उत्तम सुन्दर शरीर, सर्व अवयव, धन, दौलत, कुटुम्ब, परिवार ये सर्व धर्म या पुण्य के ही प्रतिफल हैं। इसके विपरीत परिस्थितियाँ पाप फल हैं। देखा जाता है पुण्योदय से कोई जीव राजाधिराज होता है, वह पालकी में आरूढ़ होकर चलता है। और दूसरा कोई पापादेय से उस पर छत्र लगाये है, चंवर ढोर रहा है तो कोई पालकी को कन्धे पर लिए जा रहा है। एक हृष्ट-पुष्ट सुन्दर है तो दूसरा दीन-हीन दरिद्री, दुःखी हुआ पड़ा है। कई धन-जन सम्पन्न हैं, कोई भरपेट भोजन भी नहीं पाता। एक बड़भागी कहलाता है, दूसरा मन्द-दुर्भागी। यह सब क्यों? पुण्य-पाप के फलस्वरूप हैं। पुण्य-पाप को प्रत्यक्ष फल देखकर भी क्यों जीव संशय की तुला पर सवार है, यही आश्चर्य है। 'प्रत्यक्षस्य किं प्रमाणम्' तुम धर्म और धर्म के फल में शंका मत करो। तुमने भी पूर्वभव में पुण्योर्जन किया था, उसी से यहाँ धनवान, रूपवान और कलागुण निधान वीर हुए

हो। तब वे दोनों कुमति बोले, हे साधु! परलोक कुछ भी नहीं है। परलोक जाता हुआ कोई जीव दिखलाई नहीं देता और न कोई परलोक से आकर उस लोक की चर्चा-वार्ता ही करता है।

इस पर श्री गुरु बोले—हे भद्र! धन्य हो तुम कुशास्त्र से भ्रम में मत पड़ो। देखो व्यन्तरादि परलोकादि का विवरण बतलाते हैं, वे प्रत्यक्ष कहते हैं कि मैं अमुक पर्याय से आया हूँ। बहुत से जीवों को पूर्व जातिस्मरण हो जाता है। जिससे वे अपने पूर्वभव के वृतान्त को जानकर बतलाते हैं। हे भव्योत्तम! तुम व्यर्थ शंका मत करो। मिथ्यात्व का वमन करो। सम्यक्त्व धारण करो, इस प्रकार महापुण्याधिकारी गुरु का सदुपदेश सुन 'धन्य नामक वैश्य को प्रबोध जागृत हुआ। उसका अनन्त संसारवर्द्धक मिथ्यात्व नष्ट हो गया। भक्तिभाव से गद्गद् हृदय उठकर गुरु चरणों में उत्तमांग झुकाकर नमस्कार किया। हर्ष से वन्दना कर स्तुति करने लगा।' — हे मुनीन्द्र! आपके वचनामृत का पान कर मेरा मोह-मद विष उतर गया। मिथ्यात्व तिमिर नष्ट हुआ। सम्यग्ज्ञान प्रकाशित हुआ, अज्ञान मिटा, सम्यक् बुद्धि जमी, मैं धन्य हुआ। आज मेरा जन्म कृतार्थ हुआ। हे मुनीश! प्रसन्न होइये, मुझे धर्मोपदेश दीजिये। शरण में लीजिये। मुझे संसार समुद्र से पार उतारिये। आप ही भवसागर से पार करने में जहाज के समान हैं। आप मेरा कल्याण करें। इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्री मुनिराज ने धर्मोपदेश दे उसे श्रावक धर्म स्वीकार कराया। कर्मों के मन्द उदय से धन्य ने श्रावक के बारह व्रत धारण किये, सम्यक्त्व ग्रहण किया। मिथ्यादृष्टियों का कुसंग छोड़ा वीतरागी साधु की शरण ग्रहण की

तन–मन–धन से सच्चे निष्कषायी निष्परिग्रही साधु सन्तों की सेवा में रत हुआ। आहारादि दान देना, वैयावृत्ति करना आदि में अपने को लगाया। धन्य के समान उसकी दोनों स्त्रियों ने भी जिनधर्म स्वीकार किया। जिनधर्म महान है उदार है। प्राणीमात्र को इसके धारण और पालन का अधिकार है, यह सार्वभौम राज धर्म है। धन्य की प्रार्थना और धर्म की प्रभावना के हेतु श्री मुनिराज एक माह तक वहीं रहे। सत्संग के प्रभाव से मदन की दोनों पत्नियों ने भी श्री जैनधर्म स्वीकार कर लिया किन्तु तीव्र मिथ्यात्व के उदय से या यों कहिये खोटा भवितव्य होनेहार से मदन ने दुराग्रह मिथ्या हठ नहीं छोड़ी। वह रात–दिन इनसे द्वेष करने लगा। कहा है 'जैसी हो भवितव्यता तैसी सहाय' अर्थात् जिसका जैसा शुभाशुभ होनहार होता है, उसे वैसा ही सहायक मिल जाता है।

जो हो, ये पाँचों जीव धन्य और इसकी दोनों पत्नियाँ एवं मदन बड़े भाई की दोनों पत्नियाँ जिनधर्म में दृढ़ हो व्रत, नियम, शील, सत्य त्याग उपवास, जिनपूजन मुनिदान आदि का बड़े उत्साह से पालन करने लगे। सम्यक् प्रकार जिनधर्म आराधना कर अन्त में समाधिमरण–सम्यक् मरण अर्थात् रौद्र परिणाम रहित मरण कर पाँचों ही सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए। एवं पाँच पल्य तक देवों के सुख भोगकर तुम 'धन्य का जीव महीपाल हुए हो' वे चारों स्त्रियों के जीव तुम्हारी चारों पत्नियों हुई हैं।

हे महीपाल! पूर्व जन्म में जिनधर्म का सेवन अति अनुराग से किया, इसके फलस्वरूप यहाँ तुम्हें रूप, सम्पदा, वैभव, कला–विज्ञान की प्राप्ति हुई है। इन चारों स्त्रियों ने भी तुम्हारे

साथ शील-संयम व्रतों का पालन किया। जिनधर्म का उद्योत किया, इसी से अति-रूपवान, गुणवान, साहसी तुम्हारी पत्नियाँ हुई हैं। सर्वसुख सम्पन्न होने का कारण पूर्वभव में की हुई जिनपूजा और मुनि को आहारदान ही है। धर्म का पालन भव-भव में सुखकारक होता है।

मदन का तीव्र मिथ्यात्व कर्म उदय में था। उसने मिथ्याभाव से अज्ञानवश बाल मरण किया। जिससे वन में व्याली हुआ, वहाँ से मरकर नरक में गया। दीर्घकाल तक घोर दुःख सहे। नरक की यातनाऐं अपार हैं, नारकी का वैक्रियिकशरीर होता है। वहाँ अकाल मरण नहीं, क्षणभर भी सुख-शान्ति नहीं। रात-दिन हर पल दुःख ही दुःख है, ऐसे भयंकर दुस्सह वेदनाओं को सह आयु पूर्ण कर वह मदन का जीव रत्नपुर के राजा बैरीसिंह के यहाँ अथर्णव नाम का मन्त्री हुआ। हे भाई! पूर्वभव में जिसका जिसके साथ प्रेम व द्वेष होता है, वह अन्यभव में भी जाता है।

हे भद्र! चन्द्रलेखा का जीव पूर्वभव में अथर्णव की स्त्री थी, इसलिए उस पर आसक्त हो अथर्णव ने तुम्हें घोर सागर में गिराया। हे महीपाल! पूर्व पुण्य के अतिशय से तुम सागर तिर पुनः स्त्रियों के समागम को प्राप्त हुए। पुण्ययोग से मनुष्य के जन-अग्नि, हिंसक प्राणी कृत उपसर्ग, भय अनायास टल जाते हैं। समस्त विघ्न मेघपटल सम विलीन हो जाते हैं।

दीपक से जिस प्रकार दीप जल जाता है, उसी प्रकार साधु समागम, सद्गुरु उपदेश से अन्तः ज्योति प्रकाशित हो जाती है। केवली प्रभु की वाणी द्वारा पूर्वभव सुनकर महीपाल को भी

जातिस्मरण हो गया। उसे अपने और अपनी चारों रानियों के पूर्वभव प्रत्यक्ष दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगे। वह क्षणभर में समस्त परिस्थितियों से अवगत हो गया। संसार की विडम्बना उसके समक्ष घूमने लगी। संसार, शरीर, भोगों का नश्वर स्वभाव उसके सामने प्रत्यक्ष था।

महीपाल ने हाथ जोड़ नमस्कार कर कहा — हे भगवन्! आपने मेरा पूर्व जन्म का जैसा विवरण किया, मैं इस समय प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। हे नाथ! यह संसार असार है। इसमें रंचमात्र भी सुख नहीं। आत्म-सुख ही सच्चा सुख है। जहाँ निराकुलता है, वहीं शान्ति है। वह आत्मा के सिवाय अन्यत्र कहीं नहीं है। इसलिए आत्मा ही अपनी निज वस्तु है। उसकी प्राप्ति ही निज स्वभावोपलब्धि है। यही सच्चा सुख मोक्ष सुख है, हे प्रभो! आप दया कर मुझे आत्मसिद्धि की साधक जिन दीक्षा प्रदान कर कृतार्थ कीजिये। मैं दिगम्बरी दीक्षा धारण कर स्थायी शिव सुख पाना चाहता हूँ। हे प्रभु! आप दीक्षा देकर कृतार्थ करें।

केवली प्रभु ने कहा—हे भव्योत्तम! इस समय तेरे मोहनीय कर्म का उदय है, इसलिए अभी दीक्षा-धारण करने की योग्यता नहीं है। दानादिक द्वारा संचित पुण्य के फल को अभी भोगो। महीपाल! आगे तुम्हें योग मिलेगा।

उसी अवसर पर राजा नृसिंह ने संसार विरक्त हो अपने पुत्र विजयसिंह को राज्यभार देकर भगवती जिनदीक्षा धारण की। जो प्रबुद्ध सत्पुरुष हैं, वे संसार भय से भीत आत्म-कल्याण करने में विलम्ब नहीं करते हैं। महाराज नृसिंह दिगम्बर मुनिराज हो

कठोर तपश्चरण में लीन हुए। पंचेन्द्रिय विषयों का त्याग कर शुद्ध आत्म-स्वरूप का चिन्तवन करने लगे।

महीपाल कुमार अपनी चारों स्त्रियों सहित केवली प्रभु और नृसिंह मुनिराज को नमस्कार कर अपने घर गया। श्रावक व्रतों को निरन्तर दृढ़ता पूर्वक पालन करने लगा। राजा नृसिंह की प्रशंसा एवं गुण चिन्तवन करते हुए बहुत-सा काल धर्म सेवन पूर्वक व्यतीत किया।

★ ★ ★

एक दिन महीपाल सुख से बैठा था। उसी समय रत्नसंचयपुरी से एक सेवक ने आकर पत्र दिया। महीपाल ने हर्षोत्फुल्ल हो राजा विजितारि की कुशलक्षेम पूछी। राजनीति निपुण कुमार ने फिर मोहर खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

हे महीपाल! आदरपूर्वक प्रीति से राजा आदेश देते हैं कि आप शीघ्र आकर मेरी और राज्य की शोभा बढ़ायें। हमारा जीवन व राज्य धर्मध्यानपूर्वक सानन्द चल रहा है, किन्तु आपके बिना उदास है। हमारे पुत्र नहीं है, इसलिए हे आर्य! आप ही हमारे पुत्र हैं। अतः शीघ्र आओ। जिस प्रकार चकोर-चन्द्रमा को, मयूर-मेघों को, चकवा सूर्य को, पतिव्रता-शीलवती नारी-पतिदेव को, गजेन्द्र-विन्ध्याचल अटवी को चाहता है, उसी प्रकार हम तुम्हारे दर्शन को चाहते हैं। आपके गुणों का श्रवण हमें कर्णप्रिय है। आपका गुण-स्मरण मन को प्रफुल्ल करता है। आपके नाम उच्चारण में जिह्वा हर्षित होती है और आपके दर्शन को नेत्र लालायित हो रहे हैं। गुणवान पुरुष, कान्तिमान मणि, राजहंस

जिनके आश्रय रहे, उनको सुशोभित करते हैं। जिसको छोड़ देते हैं, उसकी हानि करते हैं। इस प्रकार महीपाल पत्र पढ़के अति हर्षित हुआ। पुनः विजयसिंह राजा के समीप पत्र का अभिप्राय निवेदन किया। राजा विजयसिंह ने भी उसके अन्तरंग का अभिप्राय समझकर तदनुसार अनुज्ञा प्रदान की।

राजाज्ञानुसार कुमार महीपाल ने अपना कटक तैयार किया। उत्तम जहाज तैयार किया। सभी सामग्री एकत्रित कर शुभ दिन शुभ मुहूर्त में महीपाल कुमार ने प्रसथान किया। मार्ग में अनेक राजाओं से सेवित होता हुआ अल्प दिनों में ही वह रत्नसंचयपुर पहुँचा।

जिस प्रकार कमलिनी में भ्रमर प्रवेश करता है, गजराज नर्मदा नदी में, कमनीय, कामिनी में काम और स्वर्ग में इन्द्र प्रवेश करता है, उसी प्रकार रत्नसंचयपुर में प्रवेश किया। नगरी अति मनोहर लग रही थी। ध्वजाएँ फहरा रही थीं। चारों ओर उत्सव मनाए जा रहे थे। सर्वत्र धर्मानुष्ठान हो रहे थे। नारियाँ सज-धजकर मंगल गान कर रही थीं। बाग-बगीचों मन्दिरों की शोभा अद्वितीय थी, सब देखता हुआ नगरी में प्रवेश किया। उधर से राजा विजितारि ने समक्ष आकर प्रेम से स्वगात किया। स्नेहवश हृदय से लगाया और मनोभाव व्यक्त किया। हे कुमार! हम अब संसार शरीर भोगों से विरक्त हुए हैं। ये भोग भुजंग हैं। हमें अब आत्म-कल्याण करना है। मैं जिनेश्वरी दीक्षा धारण करूँगा। आप राज्य सम्भालें प्रजा का प्रयत्न से पालन करें। इस प्रकार कह, कुमार महीपाल को राजमुकुट पहनाकर राजतिलक

कर अपना सब भार सौंप दिया।

सम्पूर्ण विषय-वासना नष्ट होने पर साधर्मीजनों को नाना भाँति के शुद्ध पदार्थ बनवाकर भोजन कराया। नगरी में नाना उत्सव किये और फिर तीर्थवन्दनादि के लिए प्रयाण किया।

विपुलाचल (राजगिरि), पावापुर, चम्पापुर, मन्दारगिरि, उर्जयन्त गिरि (गिरनारजी), श्री सम्मेदशिखर आदि निर्वाण भूमियों में अनेक सम्पदा सहित तीर्थयात्रा की। साथ में आये हुए लोगों को विपुल धनराशि दान की। जिससे सभी लोग दूने उत्साह से पूजा दान आदि करने में प्रवृत हुए।

वह पुण्यकार्य में ही निरन्तर प्रवृति करता था। सत्य भाषण करना, दयाभाव रखना, सत्पात्रों को दान देना, जिनवचन सुनना, दिगम्बर गुरुचरणों में पैदल चलकर वन्दना करना, सेवा वैयावृत्ति करना। स्वयं बुद्धि से पात्र, सुपात्र, अपात्र, कुपात्र, आदि की परीक्षा करना इत्यादि गुणों से भूषित महीपाल से वसुन्धरा निहाल हो उठी।

दान देना ही महीपाल राजा के हाथों का भूषण था। हृदय का आभूषण क्षमा, मस्तक का आभरण जिनेन्द्र की आज्ञा, कर्णालंकार जिनागम श्रवण, ललाट का किरीट था गुरुचरणों में वन्दन, मन की मणि थी तत्त्वों का चिन्तन। इस प्रकार सभी निर्दोष आभूषणों से महीपाल अपने यश से सर्वलोक को भूषित किए हुए था। उसका प्रताप सूर्य के प्रताप समान व्याप्त था।

यद्यपि महीपाल राजा की कीर्तिलता गगनांगण तक लहरा रही थी। सर्व प्रकार की सुख सम्पदा प्रचुर मात्रा में व्याप्त थी।

पाँचों इन्द्रियों के विषय प्रतिस्पर्धा करते हुए बढ़े-चढ़े थे। परन्तु महीपाल इनमें तनिक भी रंजायमान नहीं हुआ। सतत अनासक्त भाव से ही विषय सेवन करता रहा सदैव वैराग्य की ओर ही लक्ष्य रहा। ठीक ही है—

यत्रैवाहित धी पुंसा श्रद्धा तत्र जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते॥

अर्थात् पुरुष की बुद्धि जिसमें लगती है, उसी में श्रद्धा रुचि विश्वास उत्पन्न होता है, उसी में मन तल्लीन होता है।

महीपाल महाराज राज्य में नहीं रचे। उन्होंने देखा कि मेरे पुत्र योग्य हो गये हैं। उसने कीर्तिपाल को युवराज पद पर आसीन कर दिया। अपने विक्रम से प्राप्त अनेक देशों की पालना के लिये यथायोग्य अन्य तीन पुत्रों को नियुक्त कर दिया। स्वयं विरक्त चित्त राज्यभार त्याग की इच्छा से धर्मध्यान रत श्रीगुरु चरणों के सान्निध्य की प्रतीक्षा करने लगा। विषयों से अति विरक्त, क्रमश: ज्येष्ठ पुत्र को समस्त राज्यभार अर्पित कर दिया। स्वयं विष भोगों से उदास हो परम गुरुओं का ध्यान करने लगा।

'जहाँ चाह तहाँ राह' 'भावना भव नाशिनी' 'जैसी हो भवितव्यता तैसी मिले सहाय' के अनुसार कुछ ही दिनों के बाद उस नगरी में अनेकों सुज्ञानी मुनिवृन्दों सहित परम तपस्वी वीतरागी, उत्कृष्ट ज्ञानी ध्यानी श्री 108 धर्मघोष नामा मुनिराज पधारे। मुनिराज का आगमन सुनकर राजा महीपाल अत्यानन्दित हुए। नगर में आनन्दभेरी बजने लगी। भक्तजन नर-नारी नाना प्रकार के फल-पुष्प, अक्षतादि अष्टद्रव्य पूजन पात्र सामग्री ले-

लेकर मुनिदर्शन गुरुपूजन के लिये चल पड़े। महाराज महीपाल भी राज्य से निवृत्त हो बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्याग करने के उद्देश्य से गुरु चरणों में आ पहुँचे। बड़े चाव और भाव से मुनिराज चरणाविन्द में नमस्कार किया। तीन प्रदक्षिण दी। पुनः हाथ जोड़ मस्तक झुका नमस्कार कर अष्ट द्रव्य से पूजा की, स्तुतिकर नम्रता से विनयावत हो प्रार्थना की —

'हे प्रभो! मैं संसार भीत हूँ। आत्म-कल्याणेच्छु हूँ, मुझे भवतारक शिवकारक भगवती जिनदीक्षा प्रदान कर अनुग्रहीत कीजिए।' परम् करुणासागर दीनदयाल पतित-उद्धारक भव्यजीव प्रतिबोधक मुनिराज ने उसकी भावनानुसार दिगम्बर जिनदीक्षा प्रदान की। केशोत्पाटन कर समस्त विषय विकारों के त्यागी परम शान्त महीपाल मुनिराज बाह्यादृष्टि को अन्तरंग कर घोर तपारूढ़ हुए।

सम्पूर्ण बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित ईर्यापथ विधि से विहार किया। समस्त शास्त्रों के रहस्य को हृदयंगम किया। मोह का प्रचार संकुचित कर डाला। तत्त्व का रहस्य समझ समभाव धारण किया। तेरह प्रकार का चारित्र पालने लगे। समतारूप सामायिक में तल्लीन हो गये। शत्रु-मित्र, कांच-कांचन, लाभ-अलाभ, निन्दा-स्तुति, तृण-मणि, सुख-दुःख तथा प्रासाद-वन में साम्य भाव धर अपने स्वरूप में स्थिर हुए। उत्तरोत्तर दुर्द्धर तप तपने लगे। सकल विकल्प जालों की उलझन में निर्मुक्त स्वसंवेदन सच्चिदानन्द ज्ञानघन, चैतन्य विलास रत्नत्रयी विमलबोध सुधामृत पान के आस्वाद हो कर्म कालिमा का प्रक्षालन करने लगे।

अनेक प्रकार वृत्ति परिसंख्यात तपश्चरण कर इन्द्रिय और कषायों का दमन किया। धर्मध्यान की पूर्णता कर शुक्लध्यान आरम्भा, संशयादि दोषरहित निर्मल सम्यग्ज्ञान की ज्योति प्रकाशित की। ध्यानरूपी अग्नि धांय-धांय जलने लगी। समस्त योग सिमट गये। पृथक्त्व वितर्क, एकत्व वितर्क ध्यान की ज्वाला में घातिया कर्मरूपी ईंधन भस्म हो गया। धुँआ नष्ट हुआ राख उड़ गयी, शुद्धतर आत्म-प्रकाश रह गया। चारों घातियाकर्मों के भस्म होते ही सकल लोकालोक को युगपत् प्रतिभाषित करनेवाला पदार्थ और उनकी सम्पूर्ण पर्यायें एक साथ स्वच्छ स्फटिक समान उनके ज्ञान में झलकने लगी।

अब वे सर्वज्ञ सकल लोक के ज्ञाता-दृष्टा अर्हंत केवली हो गए, तब चारों निकाय जाति के देवगण हर्ष सहित आये। इन्द्र की आज्ञानुसार कुबेर ने गन्धकुटी की सभामण्डप की रचना की, चारों ओर बारह-सभा प्रेक्षण कक्ष रचे। मध्य में रत्नजड़ित सुवर्णमय सिंहासन तीन कटनियों के ऊपर स्थापित किया। सिंहपीठ पर कंचनमय सहस्त्र दल कमल बनाया। उस कमल कर्णिका के मध्य सिंहासन से चार अंगुल प्रमाण अधर आकाश में (अन्तरिक्ष में) महीपाल केवली...... जिन...... विराजे। यह है त्याग का महत्व, कहा है, 'रज्यते त्यज्य मानेन भज्यते रज्जमानेन' अर्थात् लक्ष्मी का जो त्याग करता है, ठुकराता है, उसके पीछे यह दासी समान..... दौड़ती है और जो उसे प्यार करता है, उसे वह ठुकरा कर निकल जाती है, भगवान ज्यों-ज्यों त्याग करते गये पीछे-पीछे कुकुर के समान पूंछ हिलाती दौड़ी। समवसरण

सभा मण्डप में पहुँच गई तो भी प्रभु ने परवाह नहीं की। उसका स्पर्श भी नहीं किया। स्वयं अधर आकाश में विराजे।

बारह प्रकार के सभा भर गई। देव, मनुष्य, विद्याधर, तिर्यंच सभी उपदेशामृत पान करने के लिए समन्वित हुए। श्री महीपाल केवली भगवान की धर्मोपदेश दिव्य-ध्वनि प्रारम्भ हुई। द्विविध-यति, श्रावक धर्म का दिव्य उपदेश हुआ। अनेकों प्रतिबुद्ध मुनि हो गये। कितनों ने श्रावक धर्म अंगीकार किया। कितने ही पशु-पक्षियों ने श्रावक धर्म अंगीकार किया। जाति विरोध वैर तो प्रभु दर्शनमात्र से ही नष्ट हो गया। अनेकों भव्यों ने मुनिव्रत की अनुमोदना कर विपुल पुण्यार्जन किया। केवली प्रभु ने बतलाया जीव दया सबसे बड़ा धर्म है। माँस, शरीर, अण्डे, मछली सेवन के पाप के बराबर अन्य कोई पाप नहीं है, हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह संचय महापाप हैं। दूसरे प्राणी का मन से भी अहित विचारना दुर्गति का कारण है। सब जीव समान हैं। सबको अपनी-अपनी योग्यतानुसार आत्म-विकास करने का अधिकार है। यथायोग्य मर्यादानुसार सब जिन-धर्म पालन कर णमोकार महामन्त्र की आराधनाकर अपने आत्मा को पवित्र बना सकते हैं। हे भव्यो! परस्पर प्रेम सहानुभूति क्षमा वात्सल्य और मित्रता का व्यवहार करना चाहिए। दरिद्रों को सताना आत्मा की वंचना करना है। अपध्यान दुर्गति का कारण है। सतत् समभाव धारण करना मुक्ति का साधक है। परधन, पर-महिला आदि आत्मा का नाश करनेवाले हैं। इनकी ओर कदापि दृष्टि नहीं डालनी चाहिए। सन्तोष आनन्द का मूल है। तृष्णा नागिन है।

आशा पिशाचिनी है। संसार शरीर भोगों की तृष्णा को जीतनेवाला सच्चा पुरुष है, महात्मा है। और परम्परा से भगवान बननेवाला है। इत्यादि केवली प्रभु का उपदेश सुन कितने ही भव्यजन सम्यक्त्वी हो गये। इस प्रकार महीपाल केवली प्रभु सूर्य विहार करने लगे। जहाँ-जहाँ प्रभु पहुँचते, कुबेर गन्धकुटी सभामण्डप तैयार करता और वीतराग प्रभु का सदुपदेश करवाता। प्रभु मिथ्यारूप कुमार्गरूप अज्ञानान्धकार का उच्छेद करते। सम्यग्ज्ञान-लोक विस्तारते प्रभु भव्य-जनों को आनन्द कर्ता हुए। रत्नत्रय मार्ग प्रवर्ता। महीपाल केवली भगवान की 500 वर्ष आयु थी। आयु के 6 माह शेष रहने पर केवलीसमुद्धात कर शेष तीन कर्मों, नाम, गोत्र और वेदनीय की स्थिति को आयुकर्म के बराबर किया। चारों अघातिया समान स्थितिरूप हो गये, तब चतुर्थ इच्छित क्रिया प्रतिपाति चौथ शुक्लध्यान आरम्भा और चारों ही कर्मों को नष्ट कर मोक्षधाम-शिवधाम प्राप्त किया।

★ ★ ★

यह महीपाल चरित्र अत्यन्त मार्मिक रसीला पुण्यातिशय का द्योतक काव्य है। साहित्य प्रेमियों को भी आनन्द देनेवाला है। सरस्वती गच्छरूप आकाश में यह चरित्र निर्मल चन्द्रवत कान्ति का धारक है। चन्द्र शुक्लपक्ष में वृद्धिंगत होता है और यह चारित्र मुनिजन समूह में वृद्धि पाता है। चाँद भी निर्मल है और यह चारित्र भी उज्ज्वल है। चन्द्र अन्धकार का नाशक है और यह काव्य पुराण खोटे मिथ्यापक्ष का घातक है। शशांक सप्तर्षि तारागणों से मान्य है और यह चरित्र श्रेष्ठ मुनि, ऋषिवृन्द को

मान्य है। शशि-चन्द्र के समान यह काव्य भव्य-प्राणियों को आह्वान करनेवाला है। मिथ्यातम नाशक है। विश्वभूषण गुरु गरिमा इस चरित्र में विशेष कवित्वशक्ति का परिचय दिया है। वस्तुत्व उनकी कवित्व शैली परकाष्ठा में इस काव्य में प्रदर्शित है।

लेखक श्री कविराज चारित्रभूषण के गुरु सरस्वती गच्छान्तर्गत चारित्र चूड़ामणि भव्यों को चिन्तामणि समान विश्वभूषण जी थे। कुछ अंश ग्रन्थ का भंग हो जाने से इनके विषय में पूर्ण परिचय उपलब्ध नहीं हुआ। जितना भाग-अंश समझ में आ सका लिखा है। अस्तु पाठकगण अन्यत्र कहीं से परिज्ञान करने का कष्ट करें।

इस काव्य की हस्तलिखित प्रति गिरिडीह के दिगम्बर जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हुई थी। वहीं पर मैंने उसे ढूंढिया भाषा से शुद्ध हिन्दी करने का प्रयास किया है, ग्रन्थ अति प्राचीन और जीर्ण होने से कहीं समझने में कुछ त्रुटि रह गई हो तो विद्वज्जन संशोधन कर अध्ययन करने का प्रयत्न करें।

★ ★ ★

प्रथमानुयोग का प्रयोजन

प्रथमानुयोग में तो संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल, महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति इत्यादि निरूपण से जीवों को धर्म में लगाया है। जो जीव तुच्छबुद्धि हों, वे भी उससे धर्मसन्मुख होते हैं, क्योंकि वे जीव सूक्ष्म निरूपण को नहीं पहिचानते, लौकिक कथाओं को जानते हैं, वहाँ उनका उपयोग लगता है। तथा प्रथमानुयोग में लौकिक प्रवृत्तिरूप ही निरूपण होने से उसे वे भली-भाँति समझ जाते हैं। तथा लोक में तो रागादिक की कथाओं में पाप का पोषण होता है। यहाँ महन्त पुरुष राजादिक की कथाएँ तो हैं, परन्तु प्रयोजन जहाँ-तहाँ पाप को छुड़ाकर धर्म में लगाने का प्रगट करते हैं; इसलिए वे जीव कथाओं के लालच से तो उन्हें पढ़ते-सुनते हैं और फिर पाप को बुरा, धर्म को भला जानकर धर्म में रुचिवन्त होते हैं।

इस प्रकार तुच्छबुद्धियों को समझाने के लिये यह अनुयोग है। 'प्रथम' अर्थात् 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टि', उनके अर्थ में जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोम्मटसार की टीका में किया है।

तथा जिन जीवों के तत्त्वज्ञान हुआ हो, पश्चात् इस प्रथमानुयोग को पढ़ें-सुनें तो उन्हें वह उसके उदाहरणरूप भासित होता है। जैसे – जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं – ऐसा यह जानता था। तथा पुराणों में जीवों के भवान्तर निरूपित किये हैं, वे उस जानने के उदाहरण हुए। तथा शुभ-अशुभ-शुद्धोपयोग को जानता था व उसके फल को जानता था। पुराणों में उन उपयोगों की प्रवृत्ति और उनका फल जीव के हुआ, सो निरूपण किया है, वही उस जानने का उदाहरण हुआ। इसी प्रकार अन्य जानना।

यहाँ उदाहरण का अर्थ यह है कि जिस प्रकार जानता था, उसी प्रकार वहाँ किसी जीव के अवस्था हुई – इसलिए यह उस जानने की साक्षी हुई।

तथा जैसे कोई सुभट है, वह सुभटों की प्रशंसा और कायरों की निन्दा जिसमें हो – ऐसी किन्हीं पुराण-पुरुषों की कथा सुनने से सुभटपने में अति उत्साहवान होता है; उसी प्रकार धर्मात्मा है, वह धर्मात्माओं की प्रशंसा और पापियों की निन्दा जिसमें हो, ऐसे किन्हीं पुराण-पुरुषों की कथा सुनने से धर्म में अति उत्साहवान होता है।

इस प्रकार यह प्रथमानुयोग का प्रयोजन जानना।

—मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय-8, पृष्ठ-268-269